शान्ति लोक

[हिन्दी की प्रतिनिधि शान्ति-कविताओं का संग्रह]

Representative Hindi peace-poems

विश्व में भारतीय शान्ति-परम्परा
के अग्रदूत
लोकनेता जवाहरलाल नेहरू की
शान्तिनिष्ठा को

शान्ति लोक

प्राक्कथन :
प्रो० रामधारी सिंह 'दिनकर'

सम्पादन :
गोपाल कृष्ण कौल

१९५५

साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

प्रकाशक:
साहित्य प्रकाशन
माली वाड़ा, दिल्ली

प्रथम संस्करण
मूल्य चार रुपये

मुद्रक:
रसिक प्रिंटर्स
५, सन्त नगर, दिल्ली

विषय-सूची

	कवि	पृष्ठ
१	मैथिली शरण गुप्त	१
२	सुमित्रानन्दन पंत	४
३	महादेवी वर्मा	६
४	उदयशंकर भट्ट	६
५	रामधारी सिंह 'दिनकर'	१२
६	नरेन्द्र शर्मा	२६
७	अंचल	२८
८	शिवमङ्गलसिंह 'सुमन'	३०
९	गिरिजा कुमार माथुर	३२
१०	जानकी बल्लभ शास्त्री	३५
११	भारत भूषण अग्रवाल	३६
१२	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	५३
१३	सुमित्रा कुमारी सिनहा	५७
१४	नागार्जुन	५८
१५	केदार	६२
१६	भवानी प्रसाद मिश्र	६५

१७	नरेश मेहता	७२
१८	शमशेर बहादुर सिंह	७३
१९	गङ्गाप्रसाद पांडेय	७९
२०	रांगेय राघव	८४
२१	वीरेन्द्रकुमार जैन	८८
२२	नीरज	९२
२३	वीरेन्द्र मिश्र	९६
२४	महेन्द्र भटनागर	१०२
२५	रमानाथ अवस्थी	१०४
२६	प्रयाग नारायण त्रिपाठी	१०५
२७	मनोहरश्याम जोशी	१०६
२८	ओंकारनाथ श्रीवास्तव	१११
२९	गोपाल कृष्ण कौल	११४
३०	विनोद शर्मा	१२०
३१	युगजीत नवलपुरी	१२१

प्राक्कथन

प्रवृत्ति और निवृत्ति, ये धर्म की राजनीति हैं, जैसे इलियट ने क्लासिसिज्म और रोमांटिसिज्म को साहित्य की राजनीति कहा है। फिर भी यह ठीक है कि प्रवृत्ति की अधिकता मनुष्य को लोभी और पर-पीड़क बना देती है। इसी प्रकार, निवृत्ति की अधिकता से मनुष्य निर्धन और अत्याचार सहने के योग्य हो जाता है।

किन्तु, दोनों में से कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है? हुआ तो भारत में भी यही कि जब हम निवृत्तिवादी दर्शन के अधीन हुए, हमारी लौकिक स्वतन्त्रता जाती रही और जब हमने प्रवृत्ति के छूटे हुए सूत्र को फिर से पकड़ा, हम तुरन्त स्वतन्त्र हो गये। तो क्या अब हम निवृत्ति से बिल्कुल अलग हो रहेंगे और प्रवृत्ति को उसी जोर से अथवा उसी अर्थ में ग्रहण करेंगे जिस जोर से या जिस अर्थ में उसे पश्चिमी जगत् के लोग ग्रहण किये हुए हैं? प्रवृत्ति के अनेक गुण हैं, किन्तु, उचित मात्रा में निवृत्ति को धारण किये बिना संसार में शान्ति नहीं आयेगी, न मनुष्य को संतोष प्राप्त होगा। भविष्य तो सुस्पष्टता से दिखलाई नहीं पड़ता, किन्तु अतीत की शिक्षा का सार यह मालूम होता है कि संसार अन्ततोगत्वा उनका होगा जो किसी हद तक असंसारी हैं।

संसार को शान्ति की आवश्यकता पहले भी थी और आज भी है; प्रत्युत् युद्ध की घातकता में जो अपरिमित वृद्धि हुई है उससे शान्ति की आवश्यकता आज जितनी अधिक प्रतीत होती है उतनी वह पहले कभी और

अनुभूत नहीं हुई थी। यही कारण है कि शान्ति को मनुष्य आज जिस निश्छलता से पुकार रहा है, उस निश्छलता से उसने पहले उसे कभी नहीं पुकारा था। किन्तु, शाँति की पुकार ज्यों-ज्यों जोर पकड़ती जा रही है, त्यों-त्यों यह रहस्य भी खुलता जाता है कि प्रवृत्ति की गाढ़ी कड़वी स्याही से शाँति की कविता नहीं लिखी जा सकती। शाँति की कविता लिखने के लिए उसमें निवृत्ति का पतला पानी मिलाया जाना चाहिए।

शान्ति की नाव कहाँ अटकी हुई है? क्या शान्ति की बाधा साम्यवाद है, जिससे प्रजातन्त्रवादी देश संसार की रक्षा करना चाहते हैं? अथवा शान्ति की बाधा मरणशील पूँजीवाद है? ये समस्या के बाहरी रूप हैं। मुख्य बाधा मनुष्य की भोगवादी वृत्ति है; मुख्य बाधा मनुष्य की असहिष्णुता है; मुख्य बाधा मनुष्य में मानसिक हिंसा का यह भाव है कि संसार का कल्याण केवल उस मार्ग पर चलने में है जिस पर मैं चल रहा हूँ। शान्ति के अवतरित होने के पूर्व मनुष्य में मानसिक अथवा बौद्धिक अहिंसा का उदय होना आवश्यक है। सत्य केवल वही नहीं है जो हमें दिखाई देता है। संभव है, वह बात भी सत्य हो जो दूसरों के मुख से आ रही है। हिंसा केवल शारीरिक क्लेश का नाम नहीं है न हिंसा केवल निन्दा और अपशब्द को कहते हैं। आँखें मूँद कर यह मान बैठना भी हिंसा ही है कि सत्य केवल वह है जो मुझे दिखाई पड़ता है। बौद्धिक अहिंसा मन की उदारता को कहते हैं। बौद्धिक अहिंसा समझौते और सामंजस्य की वृत्ति का नाम है। सत्य के मार्ग पर आये हुए व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह दुराग्रही नहीं होता, वह इस हठ को नहीं मानता कि मेरा मार्ग सही तथा और सबके मार्ग गलत हैं। भारत ने अहिंसा की साधना करते-करते जिस सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त का पता लगाया वह अनेकान्त-वाद या स्याद्वाद का सिद्धान्त है और भारत के सबसे बड़े अनेकान्तवादी सन्त महात्मा गाँधी हुए हैं जो समझौते के सबसे बड़े प्रेमी थे। अनेकान्तवाद, शान्ति,

समझौता और राज्यहीन समाज, ये एक ही तत्त्व के अनेक नाम हैं। जैसे राज्यहीन समाज में मनुष्य लाठी से हाँक कर पहुँचाया नहीं जा सकता (राज्यहीन समाज के दरवाजे पर पहुँचने के पूर्व मनुष्य को भली-भाँति निर्मल हो जाना पड़ेगा), उसी प्रकार, जब तक मनुष्य आँखें लाल करके बहस करने का आदी है, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति का मार्ग समझौते का मार्ग है, सह-अस्तित्व का मार्ग है, अनेकान्तवाद और स्याद्वाद का मार्ग है। शारीरिक हिंसा मनुष्य उसी अनुपात में कम करेगा जिस अनुपात में वह मानसिक हिंसा से परहेज़ करता है, जिस अनुपात में वह विरोधी मतों को समझने की धीरता प्राप्त करता है। शान्ति, विश्वबंधुत्व और विश्ववाद, ये बहुत-कुछ वे ही गुण हैं जिनका प्रतिनिधित्व पहले धर्म करता था। धर्म का प्राचीन रूप निरादृत हो गया, किन्तु, उसके भीतर का सत्य अब नये नारों के भीतर से सिर उठा रहा है। यह शुभ लक्षण है, क्योंकि धर्म मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। धर्म सभ्यता का सबसे बड़ा मित्र है। यदि धर्म नहीं रहा तो सभ्यता भी नहीं रहेगी। क्या शान्ति की रक्षा प्रत्येक घर में प्रहरी बिठला कर की जायगी ? आज भी पुलिस उनके लिए नहीं रखी जाती जो धार्मिक हैं, बल्कि, उनके कारण जो धर्म को नहीं मानते, जो यह विश्वास करते हैं कि पुलिस से बच कर जो कुछ किया जाय वह पाप नहीं है।

विज्ञान की अति ने आखिरकार मनुष्य की आत्मा को जगा दिया। जो मनुष्य धर्म को लात मार कर बुद्धि के नेतृत्व में चला था, वह, अन्ततः अब उस जगह पहुँच गया है जहाँ उसे यह सोचना पड़ रहा है कि बुद्धि, कदाचित् यथेष्ट नहीं है। विज्ञान हमें केवल शक्ति दे सकता है। कदाचित् उससे यह याचना ही व्यर्थ है कि इस शक्ति का उपयोग हम किस उद्देश्य के लिए करें। इस उद्देश्य की रचना धर्म किया करता था और आज भी यह कार्य धर्म के ही हवाले किया जायगा। रूस अथवा चीन या पंडित जवाहरलाल ईश्वर को नहीं मानते इससे धर्म का खंडन नहीं होता। बुद्धदेव ने जिस धर्म की रचना की थी

वह अत्यन्त सात्विक था, किन्तु, ईश्वर के लिए उसमें स्थान न था। ईश्वर रहें या नहीं रहे, किन्तु मनुष्य के जीवन में धर्म का आवास रहना ही चाहिए। धर्म कोमलता है, धर्म दया है, धर्म त्याग है, धर्म विश्वबन्धुत्व और शान्ति है। घंटा, शंख, आरती और अजान, धर्म के ये चिह्न लुप्त होते जा रहे हैं और उनके लुप्त होने से मानवता की तनिक भी क्षति नहीं हुई। किन्तु, कोमलता, दया और त्याग, ये आज भी आवश्यक हैं और धर्म में जो स्थान पहले वैयक्तिक मुक्ति का था वह अब विश्वबन्धुत्व और शान्ति का माना जाना चाहिए। जो व्यक्ति मनुष्य-मनुष्य के बीच एकता को नहीं मानता वह अधार्मिक है और जो शान्ति के पक्ष में अपनी जीभ खोलने से डरता है उसे कायर नहीं, पापी कहना चाहिए।

भारत ने विश्व के शान्तियज्ञ में निर्भीकतापूर्वक जो भाग लिया है उससे बाहर तो हमारा सुयश बढ़ा है, किन्तु देश के भीतर कहीं-कहीं लोग इस शंका से भी पीड़ित हो रहे हैं कि हमारी वैदेशिक नीति, हमारे अपने हित से, शायद ठीक नहीं है। उनके सामने काश्मीर और गोआ के प्रश्न हैं और वे समझते हैं कि हमारा शान्तिवाद हमारी राह का काँटा बनेगा। ये हिसाबी मुनीम की बातें हैं जो नफा और नुकसान के आँकड़ों से आगे नहीं देख सकता। प्रत्येक जाति की वैदेशिक नीति उसके राष्ट्रीय चरित्र की परछाईं होती है। हमारा राष्ट्रीय चरित्र योद्धा नहीं, शान्ति-सेवक का चरित्र रहा है। लगभग पाँच हजार वर्ष के इतिहास में हमने अपने देश से बाहर जाकर किसी देश पर आक्रमण नहीं किया, न हमने दूसरों का धन हरण करने अथवा उन्हें दास बनाने की कोशिश की। यह ठीक है कि देश के भीतर दिग्विजय करने वाले योद्धा इस देश में भी बहुत हुए, किन्तु भारत नाम में जो दिव्यता है उसके प्रतीक यहाँ अर्जुन नहीं, युधिष्ठिर रहे हैं; चन्द्रगुप्त नहीं, अशोक रहे हैं। और आधुनिक-काल में भी भारतवर्ष की जनता का निश्छल प्रेम लोकमान्य तिलक की अपेक्षा महात्मा गाँधी को अधिक प्राप्त हुआ।

हम स्वाधीन केवल अपना पेट पालने को नहीं हुए हैं, हमें विशाल विश्व की भी सेवा करनी है और संभव हुआ तो संसार की अशान्ति का भी कोई टिकाऊ समाधान निकालना है। विचित्र बात है कि आज जो देश जितना ही सबल और समृद्ध है वह होश की बात भी उतना ही कम करता है, मानो, सत्य बोलना और अक्ल की सलाह देना केवल निर्बल राष्ट्रों का कार्य रह गया हो। भारत निर्बल और एक प्रकार से नवजात राष्ट्र है, किन्तु शान्ति, और न्याय के पक्ष में वह जो निर्भीकता दिखला रहा है वह आकस्मिक बात नहीं है। सच तो यह है कि हमारी वैदेशिक नीति और कुछ हो ही नहीं सकती थी। सिकन्दर, चंगेज खाँ, नेपोलियन और हिटलर की ओर लोभ की दृष्टि से देखना अब काल के प्रतिकूल देखने के समान है। आने वाला विश्व सिकन्दर और हिटलर का विश्व नहीं, बुद्ध, ईसा, गांधी और जवाहर का संसार होगा। तलवार की दुनियाँ खत्म हो रही है। अगले संसार के नेता वे होंगे जो धीर और सहनशील हैं जो समझौते और सह-अस्तित्व को कायरता नहीं, धर्म मान कर वरण करेंगे।

मगर काश्मीर, गोआ और फारमोसा का क्या होगा? दिल की आग भभक कर दिमाग पर छा जाती है। मनुष्य में अभी भैंस के कितने ही लक्षण विद्यमान् हैं। भैंस में भी तो यह राष्ट्रीयता ही है जो दूसरी भैंस को अपने खूँटे के पास नहीं आने देती? छोटी मनुष्यता और बड़ी मनुष्यता में संघर्ष है। और इस संघर्ष में बर्बरता विजयिनी और संस्कृति पराजित होती देखी गई है। तो क्या इस भय से हम संस्कृति के विकास पर कहीं न कहीं रोक लगा दें और उतनी बर्बरता बराबर लिये रहें जो बर्बरता के वार से बचने अथवा उसे नियंत्रित करने को आवश्यक है? उत्तर के लिए हमें चाणक्य-नीति के नहीं, अपने हृदय के पन्नों को उलटना चाहिए। यही वह असि-व्रत है जिसका पालन आज जवाहरलाल कर रहे हैं और जिसका पालन सभी देशों के नेताओं को करना चाहिए।

पग-पग पर हिंसा की ज्वाला, चारों ओर गरल है;
मन को बाँध शान्ति का पालन करना नहीं सरल है।
तब भी जो नरवीर असिव्रत दारुण पाल सकेंगे,
वसुधा को विष के विवर्त से वही निकाल सकेंगे।

पटना
९ नवम्बर, १९५५ ई०

रामधारी सिंह 'दिनकर'

कवियों का 'शान्तिलोक'

युद्ध की विभीषिका और विज्ञान के नयें नाशक अविष्कारों ने कला और साहित्य पर दो प्रकार के प्रभाव छोड़े हैं। एक प्रभाव ऐसा है जिसकी प्रतिक्रिया, निराशा, अनास्था, पुंसत्वहीनता, और अविश्वास की भावना के रूप में साहित्य में प्रतिबिंबत हुई और दूसरा प्रभाव ऐसा है जिसकी प्रतिक्रिया साहित्य में एक नई आशा, एक नये संकल्प, और एक नई रचना के विश्वस्त उदात्त स्वर में प्रतिबिम्बत हुई है। युद्ध और विज्ञान ने साहित्यकारों में दो प्रकार के प्रतिक्रियाएँ क्यों पैदा कीं ? स्पष्ट है कि एक सी ऐतिहासिक परिस्थितियों का प्रभाव सब साहित्यकारों पर समान रूप से एकसा नहीं होता है और इसलिए उसकी प्रतिक्रिया भी भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिगोचर होती है। मानवद्रोही प्रतिक्रिया का स्वरूप इस प्रकार सामने आया है :—

"भाड़ में जाओ सब, हमारे दक्षिणी प्रदेश में शांति की दुर्गन्ध आती है।

मुझे केवल तलवारों की खड़-खड़ में ही जीवन का आभास होता है।"

—एजरा पाउन्ड

इस परम्परा के (यदि इसे परम्परा माना जाय तो) आधुनिक कवि दूसरों पर टिप्पणी करते हुए जाति द्वेष और फैसजम की हिमायत करने से नहीं चूकते। हिन्दी की आधुनिक कविता में भी कहीं कहीं इस प्रकार की प्रतिक्रिया का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। ऐसी कविता के लेखकों (कवियों नहीं) को भी

शान्ति में युद्ध की राजनीति की दुर्गन्ध आती है और युद्ध की भूमिका में परम शान्ति का आनन्द प्राप्त होता है। चेखव ने एक बार कहा था कि यदि नाटक के पहले अंक के पहले दृश्य में बन्दूक लटकी हुई दिखाई जाती है तो नाटक के समाप्त होने तक वह बन्दूक गोली भी छोड़ देती है। लेकिन इस प्रकार के कवि अनास्था और भय के कारण प्रारम्भ से ही अपनी रचना में घृणा और हिंसा की बन्दूकें दागना शुरू कर देते हैं। इनकी सन्देहशील प्रवृति मानवता के किसी भी शुभ प्रयत्न को राजनैतिक दाँव-पेच से अलग देखने में असमर्थ हैं; यद्यपि वे ही राजनीति को साहित्य से अलग रखने की सब से ज्यादा चीख पुकार करते हैं।

इसके विपरीत युद्ध और विज्ञान ने साहित्यकारों को न तो डराया और न ही उन में ऐसी अनास्था,श्रद्धा, निराशा और कायरता का प्रतिबिम्ब छोड़ा है जो समस्त मानवता को सन्देह की दृष्टि से देखने के लिये प्रेरित करता है। बल्कि उन में एक नया विश्वास पैदा हुआ है कि युद्ध अनावश्यक ही नहीं निंदनीय भी है। दुनिया के अनेक समझदार लेखकों और कलाकारों ने इस नये अनुभव से विश्वशान्ति अन्दोलन को जन्म दिया। इस आन्दोलन में पूर्व और पश्चिम के अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों और कलाकारों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। पहले तो अनेक अनास्थावादी लेखकों ने इसे सन्देह की दृष्टि से देखा और प्रचार किया कि एक विशेष राजनैतिक सिद्धान्त को मानने वालों का दलगत आन्दोलन हैं। लेकिन जब धीरे-धीरे इस आन्दोलन में करोड़ों जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व होने लगा तो जानपाल सार्त्र जैसे अस्तित्ववादी साहित्यकार और पिकासो जैसे मौडर्नस्टि कलाकार भी इस आन्दोलन के साथ आ गये। यद्यपि साहित्यकारों और कलाकारों द्वारा संचालित यह शान्ति-आन्दोलन दूसरे महायुद्ध के बाद विश्वव्यापी बन सका लेकिन इसका जन्म दूसरे महा-युद्ध से पहले ही हो गया था। संसार के विख्यात लेखकों ने प्रथम महायुद्ध की विभीषका को देख कर युद्ध की बर्बरता की निन्दा

की थी और एक शान्ति का घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था। इस घोषणा-पत्र पर मैक्सिम गोर्की, रोमाँरोला, रविन्द्रनाथ ठाकुर, क्रोचे, आँइस्टीन और स्टीफिन ज्विग जैसे महान लेखकों और विचारकों के हस्ताक्षर थे।

इन लेखकों के साथ विश्व के एक हजार प्रतिष्ठित लेखकों ने भी इस पर अपने हस्ताक्षर किये थे। द्वितीय महायुद्ध के बाद इस घोषणा-पत्र के उदात्त स्वर को ही शान्ति-आन्दोलन के रूप में विकसित किया गया और अनेक शान्ति-अपीलो और शान्ति के घोषणा-पत्रों पर आधुनिक युग के अनेक लेखकों कलाकारों ने हस्ताक्षर किये। शान्ति आन्दोलन के बढ़ने से युद्धप्रिय राजनीतिज्ञों ने डर कर उस पर नये-नये राजनैतिक अरोप लगाने शुरू कर दिये उन्होंने वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर एक अलग मोर्चा बनाने का प्रयास किया, जिससे शान्ति-आन्दोलन में फूट पैदा हो सके, लेकिन उनकी घृणा और अनास्था ने ही उनके प्रयत्नों का भन्डा फोड़। कर दिया और आज युद्धप्रिय लोगों को भी युद्ध का समर्थन शान्ति की भाषा में करने के लिये मजबूर होना पड़ा है। यदि शान्ति का आन्दोलन इसी प्रकार दृढ़ और अग्रगामी रहा तो सम्भव है कि जो आज केवल शान्ति की भाषा का प्रयोग करते हैं कल उनमें शान्ति की भावना भी पैदा हो जाय।

विश्वशान्ति के आन्दोलन में भारतीय विचारधारा की देन बहुत महत्वपूर्ण है। भारत की सांस्कृतिक परम्परा शान्ति की परमपरा है। द्वितीय महायुद्ध के समय महात्मा गाँधी और टैगोर ने युद्ध और फासिज्म दोनों का विरोध किया था। गाँधी जी ने किसी भी प्रकार के युद्ध को अनुचित बताया था और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने फासिस्ट बर्बरता की खुले आम निन्दा की थी। गांधी नेता थे और रवीन्द्रनाथ साहित्यकार' लेकिन दोनों की भावना भारतीय संस्कृति के मूल में रहने वाली उस अहिंसा का प्रतिनिधित्व करती है जिसका भारतीय जीवन में सदा एक स्थान रहा है और हमारी सांस्कृतिक विरासत के रूप मेंकिसी-न-किसी प्रकार हमारे जीवन के साथ नत्थी है। इसके बाद भारत की

विदेश नीति ने अहिंसा की इस परम्परा को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्थान दिलाने का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप शान्ति-आन्दोलन अधिक व्यापक रूप में विकसित होने लगा। और युद्धवादी शान्ति-आन्दोलन को सिर्फ साम्यवादियों का आन्दोलन कह कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे उन्हें भी इस आन्दोलन की सार्थकता का किसी-न किसी रूप में आभास मिलने लगा। भारत के इस प्रयत्न से शान्ति की समस्या को और अधिक गहराई से समझा जाने लगा और प्रश्न युद्ध और शान्ति के बाहरी रूप से हट कर उसके मूल का हिंसा और अहिंसा का बन गया। जब तक राजनीति हिंसा की भावना से संचालित है तब तक उसके परिणामस्वरूप विनाशकारी युद्धों का जन्म अवश्यम्भावी है। इसलिए भारत ने अहिंसक राजनीति (नैतिक राजनीति) पर जोर दिया। युद्ध से तटस्थता और सहअस्तित्त्व अहिंसा के ही राजनीतिक रूप हैं। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अहिंसा की मूल मानवीय भावना को प्रतिष्ठित किया और राष्ट्र, देश और जाति के किसी प्रकार के भी आपसी झगड़ों को बिना युद्ध के ही समझौते और विचार-विनिमय से सुलझाने का रास्ता दिखाया। उसने विश्वव्यापी गुटबन्दियों से अलग रह कर काल के ललाट पर शान्ति का तिलक लगाया। परिणाम यह है कि आज गुट टूट रहे हैं और सन्देह के पर्दे उठते जा रहे हैं। सहअस्तित्व ने दो दृष्टिकोणों के कट्टर अनुयायियों को भी भिन्नलिंगियों (अपोजिट सेक्सवालों) की तरह एक दूसरे से प्रेम करना सिखा दिया है। साम्राज्यवादियों और उपनिवेशवादियों की युद्धप्रिय राजनीतिक अभिसन्धियों के बावजूद विश्व की सांस्कृतिक चेतना में और देश-देश के जन-मानस में शान्ति की इस परम्परा के नये-नये कमल खिल रहे हैं, जो उद्जन और परमाणु के विस्फोटक धुएँ में भी कभी नहीं मुर्झाएँगे।

शान्ति की इस सांस्कृतिक परम्परा के अगुआ सदा कवि और कलाकार रहे हैं। जब भी दुनियाँ में हिंसा का ज्वालामुखी फूटा है तब ही कवि और

कलाकारों ने अहिंसा के उदात्त स्वर को मुखरित किया है और दूसरे आगामी हिंसक विस्फोट को होने से रोक दिया है। अहिंसा कलाकार की साधना बन कर सदा जीवन की हिंसा से संघर्ष करती रहती हैं—इसे दूसरे शब्दों में प्रेम, सहानुभूति, करुणा, वेदना और आस्था कुछ भी कह सकते हैं। भारतीय आदिकाव्य का उद्‌भव ही अहिंसा की भावना से उत्प्रेरित हुआ था। आदि कवि वाल्मीकि की करुणा को कालिदास ने उनके कवि होने का कारण माना और लिखा:—

निषाद विद्धाण्डज दर्शनोत्थः।
श्लोकमापद्यत यस्य शोकः॥

कुछ कलाकारों की शिकायत है कि विज्ञान के युग में उनकी (अहिंसक) आस्था का आसन डोल उठा है। शिकायत का कारण उतना विज्ञान नहीं है, जितना इन कलाकारों का मनोविज्ञान है, क्योंकि जहाँ विज्ञान विनाशलीला रच सकता है वहाँ नई सृष्टि की रचना भी कर सकता है। विज्ञान का उपयोग मनुष्य के लिए है, मनुष्य विज्ञान की खुराक नहीं है। विज्ञान से आतंकित इस युग में विज्ञान को मनुष्य का वाहन बनाने की चेतना कवि-कलाकार ही दे सकते हैं। इसलिए वैज्ञानिकों से ज्यादा बड़ा दायित्व आज कवि का है कि वह अपनी कला के द्वारा विज्ञान को ध्वंस-लीला का साधन बनने से रोकने के लिए मनुष्य के अन्दर सोये विश्व-प्रेम को जगाए। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कवि की क्षमता के विषय में लिखा हैं:—

"मनुष्य का विज्ञान बताता है: 'सारी सृष्टि में, अणु-परमाणु की लड़ाई है।' किन्तु कवि जब इस समर-भूमि की ओर आँखें दौड़ाते हैं तो यह लड़ाई फूल होकर खिलती है, तारा बन कर चमकती है, नदी होकर बहती है, और बादल बनकर उड़ती दिखाई देती है। जब हम वस्तु को उसकी समग्रता में देखते हैं तो पाते हैं, भूमा के क्षेत्र में सुर से सुर का सम्मिलन होता है, रेखा से रेखा का योग होता है। रंग से-रंग की माला का परिवर्त्तन होता है। किन्तु

विज्ञान इस समग्रता से विच्छिन्न करके दलबन्दी, धक्कम-धुक्का, हाथापाई ही देखता है। वह सत्य विज्ञान का सत्य हो सकता है, किन्तु वह सत्य न तो कवि का है और न कविगुरु का।"

इसलिए आज कवि को विज्ञान के आंतक से अभिभूत नहीं होना है। जो सत्य कवि की साधना ने पा लिया है, उसके सामने विज्ञान का सत्य सदा मिथ्या ही प्रमाणित होगा। विज्ञान का सत्य द्वैत है, यानी हिंसा, द्वेष और युद्ध। और कवि का सत्य है अद्वैत—यानी अहिंसा, प्रेम और शान्ति।

'शान्तिलोक' हिंदी कवियों के शान्ति-स्वर का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें जिन कवियों ने सहयोग दिया है, उन्होंने मात्र एक पुस्तक या संकलन में सहयोग नही दिया है; बल्कि भारत और विश्व के शान्ति-यज्ञ में अपनी वाणी-कल्याणी का मन्त्र दान दिया है। व्यक्तिगत रूप से मैं इन सब कवियों का आभारी हूँ कि उन्होंने अपने योग-सहयोग से मुझ जैसे साधन-हीन को इस संग्रह के निकालने योग्य बना दिना। विशेषत: आदरणीय श्री दिनकर जी का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सहयोग के साथ-साथ इस संग्रह की प्रस्तावना भी समय पर लिख कर भेज दी। पहले इस संग्रह की कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद भी साथ में प्रकाशित करने का स्वप्न था, किन्तु सब कविताओं का अनुवाद समय पर सम्भव नहीं हो सका, इसलिए स्वप्न अधूरा रह गया। लेकिन इतनी आशा अवश्य है कि अगला संस्करण अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित होगा। जिन कवियों की शान्ति कविताएँ समय तक न आने से इसमें रह गई हैं, उन्हें भी साथ लेने का प्रयत्न किया जायगा।

मण्डी बाजार,
गाजियाबाद।

गोपालकृष्ण कौल

अणु

मैथिलीशरण गुप्त

हर-हर-हर बम भोला,
थर-थर-थर तेरा आसन भी कह विजयी, क्यों डोला ?
तुच्छ एक अणु ही था मैं तो, तूने ही विच्छिन्न किया,
भेद-भेद कर पाप-बुद्धि से मुझे मुझी से भिन्न किया।
रहूँ क्यों न कितना ही क्षुद्र,
मुझ में भी है मेरा रुद्र ।
कुशल नहीं तेरा भी अब तो फैला फूट फफोला ।
हर-हर-हर बम भोला ।

दलित हुआ प्रतिपक्ष, इसी से फलित हुआ क्या श्रम तेरा ?
हाय प्रलय करता ही प्रकटा भ्रममूलक विक्रम तेरा !
लिया, छोड़ गुण, तूने दोष,
कैसे हो मुझ को संतोष ?
मिटे चिह्न तक नर-नगरों के गिरा एक जो गोला ।
हर-हर-हर बम भोला ।

मरघट में भी और नहीं तो अस्थि-फूल तो खिलते हैं,
तेरी जली हुई मिट्टी में कण-भी किसके मिलते हैं ?

घोर शून्य में चारों ओर,
लेता है जो वायु हिलोर।
किन फणियों की फुफकारों ने उस में भी विष घोला।
हर-हर-हर बम भोला।

निज बलि देकर जिन वीरों ने दिया प्रथम परिचय मेरा,
तुझे नहीं, उन परीक्षकों को, पहुँचे जय-जय-जय मेरा।
उनके दारुण वध का पाप,
मुझ पर नहीं, तुझी पर आप।
अब तेरा साम्राज्यवाद भी छोड़े अपना चोला।
हर-हर-हर बम भोला।

नहीं एक साधक है तू ही, औरों की भी सिद्धि यहाँ,
भेदी ज्ञान-यज्ञ की वेदी बिकी किसी के हाथ कहाँ?
अरे एक-से-एक महान्,
देते हैं अपना बलिदान।
अपने हाथ दूसरों का भी मन क्या तूने तोला?
हर-हर-हर बम भोला।

मानव, निज दानव को लेकर माना तूने बहुत मथा,
निकल हलाहल ने पहले ही आज निकाली नई प्रथा।
किसमें है वह आत्मत्याग,
पिये प्रथम जो पिघली आग?
देकर जीवन-मूल्य सहज क्या मरण किसी ने मोला?
हर-हर-हर बम भोला।

अन्त यहीं तक नहीं, सूक्ष्म है अणु से भी अणु एक बड़ा,
उसको पाना ही पाना था जो अविभिन्न अदृश्य खड़ा।
उसके माया-बल का पात्र,

हूँ यथार्थ में अणु ही मात्र ।
अद्‌भुत भद भरा है उसका यह अम्बर का झोला ?
हर-हर-हर बम भोला ।
मैं तो एक शक्ति हूँ मुझ से सृष्टि करो वा नाश करो !
राजस-तामस बहुत हुआ अब सब निज सत्व विकास करो !
उतनी ही लघु-गुरु वह व्यष्टि,
जितनी जिसके साथ समष्टि ।
लो, निग्रह का नहीं संधि का नव पथ मैंने खोला ।
हर-हर-हर बम भोला ।
सावधान, जो जगा न अब भी विश्व-बोध तेरा अपना,
तो चिर निद्रा में ही परिणित होगा स्वार्थ-भरा सपना ।
यदि महान् अणु की भी सृष्टि,
तो शुभ नहीं संकुचित दृष्टि ।
जन, सुन तेरा ब्रह्म आज यह मेरे मुँह से बोला ।
हर-हर-हर बम भोला ।

नेहरू-युग

सुमित्रानन्दन पंत

अभिवादन

हे नेहरू-युग के नए संचरण
शत अभिवादन !
गाँधी-युग के सूक्ष्म कुहासों से कढ़,
प्रौढ़ यन्त्र-युग के मारुत गति-चक्रों पर बढ़,
उतर रहा लो, मूर्त रूप धर
जन समाजवादी धरती पर
नेहरू-युग, निर्धूम अग्नि-सा उज्वल
पावन, शीतल !
गाँधी ही का सत्य बना नव युग का सारथि—
अन्य न थी गति !
धन्य हुई युग-कवि की भारति !
विजित हो रहा यांत्रिक दानव,
निखर रहा जन-तान्त्रिक मानव !
बदल रहा, लो, गोल छेद भी द्वन्द्व तर्कमय
बाह्य परिस्थितियों का दुर्जय !
—बदल रही खूँटी चौकोर-विराट समन्वय ;
बदल रहा युग रुद्ध भू-हृदय !
शुभ्र अहिंसा अश्व सौम्य कर रहा दिग्विजय,

नेहरू का मन ही नवयुग का मन निः संशय !
भौतिकता—आध्यात्मिकता का
मानवता—सामूहिकता का
यह महान परिणय,
प्रज्ञा विज्ञान का उभय !
महत ध्येय, साधन मंगलमय,
नव सर्वोदय, नव अरुणोदय
जय मध्यम पथ !
जय तृतीय बल !
शांति-क्षेत्र होता दिग् विस्तृत,
संभव भू पर सहस्थिति निश्चित,
देखो बढ़ता मानव का पथ
धीरोद्धत—
पंचशील का ले ध्रुव संबल !
रक्त-हीन नव लोक क्रान्ति हो,
दूर भ्रान्ति हो,
विश्व शांति हो !
युद्ध ध्वंस हो, हिंस्र समापन,
भरें धरा—व्रण,—
अणु हो रचना-श्रम का वाहन !
भू निर्माण सृजन के शुभ क्षण
करें अवतरण,—
निर्भय हों जन
नेहरू-युग के नए चरण
शत युग अभिवादन !

अनेक कण्ठों का एक स्वर

महादेवी वर्मा

है एक शान्ति में सुख अपार ।
हो क्षमामयी यह धरा हमें, विस्तृत अम्बर भी रहे शान्त,
सागर का यह अस्थिर जल भी हमको हो मंगलमय प्रशान्त,
वन-ओषधियाँ हों आज हमारे जीवन के हित शान्त क्षान्त,
सब कठिन क्रूर विपरीत हमें अब शान्ति रूप में हों उदार !
है एक शान्ति में क्षेम सार ।१।

यह निर्ममता का कठिन भार ।
हो जहाँ अपेक्षित, स्नेह और विश्वास-छाँह का अभिनन्दन,
जब उसी दिशा में उठें नित्य शत भय शंका आपद के घन,
रखता हो कोई जहाँ शान्ति का सागर पाने की आशा,
अब उसी ओर से घिर आवे तूफान प्रबल आँधी अपार ।
कितना निष्ठुर निर्मम प्रहार ।२।

कैसे आता है यह विचार !
कैसे अपने को भूल एक, जिसको नश्वर तन मिला दान,
करने लगता संकल्प दूसरे को कर देगा विगत प्राण ।
हो इष्ट उसी को, औरों का परिजन-परिग्रह-सन्तति-विनाश,

जो जान रहा है मर्त्य, खुला है उसके भी हित मरण-द्वार ।
यह निर्ममता कितनी असार ।३।

तब जीवन में होगा न सार ।

कुसुमित कुंजों को कर लोगे जिस दिन तुम अपना समरांगण,
अर्चन-गीतों के मन्दिर में भर लोगे अस्त्रों का झनझन,
अपने जीवन-हित छीन और से लोगे धरती-धन-जीवन,
वह हार न होगी हार उन्हें, पर विजय तुम्हारी एक भार ।
निष्ठुर जीवन का मूल्य क्षार ।४।

जीवन ही विश्वासी उदार ।

जो हिंसा-बैर-विरोध-शून्य को भी कर देगा प्राणहीन,
उसने मानो सब मनुज-जाति का ही जीवन-धन लिया छीन ।
पर जो करता है यहाँ एक जीवन की रक्षा का विधान,
उस एक व्यक्ति ने ली मानो यह मानव-संसृति ही उबार ।
वह सत्पथधारी है उदार ।५।

बिन स्नेह सभी जय है असार ।

जो शक्ति विजित उसके न कभी पाते विराम उद्भ्रांत प्राण,
केवल नत मस्तक सह लेता निज दुर्बलता का कठिन दान ।
जो बँधकर गुण के बन्धन से खिच आता है सुख से समीप,
वह स्नेह-विजित पल में देगा तम पर अपना सर्वस्व वार ।
शस्त्रों से अर्जित विजय हार ।६।

जीवन पर ही न विरोध भार ।

धरती के विस्तृत अंचल से वह कर देता सब वैर दूर,
पैने कुन्तों को खण्ड-खण्ड वह करता धनु को चूर-चूर ।

उठती लपटों की ज्वाला में रख रथ को करता भस्मसात्,
तब रुक जाते संघर्ष, युद्ध के साधन होते क्षार क्षार ।
सुख शान्ति तभी पाते प्रसार ।७।

१—अथर्ववेद—१९-९-१४
२—चुल्लवग्ग—५-२०-१
३—ज़ोरास्ट्रियनिज्म-फ्रैगमेन्ट्स ८ औगेमर्द ४८
४—क्वांग त्ज़े—२४-२
५—कुरान—५-३५
६—कन्फ्यूशियनिज्म-मेन्सिअस— २-१-३-२
७—ओल्ड टेस्टामेन्ट:—बुक आफ़ साम्स—४६

शान्ति-दान दो !

उदयशंकर भट्ट

काँपता, हिरता सा, डरता सा युग यह
चिन्ता के सफेद डैने बन्द कर प्राण में,
प्राणों के अन्तर में कहता क्या सुनते हो,
एटम प्रहारी सुनो,
हाईड्रोजन बंब के प्रलय-परिणामी सुनो,
सुबुकता, सिसकता सा पीला पतझड़ सा युग,
कफन सी आँखों में नमी भरे, क्षय भरे,
चुप-चुप निहारता पसीने से तर-बतर—
खोजता है खोया हुआ अपना पन, अपना मन,
शान्ति धन,

वन में, पहाड़ों पर, सागर–मैदान में,
देश-देश, नगरों में, गलियों में, घरों के बीच—
पूछता है बच्चों और बूढ़ों से, जवान से ;
ठिठके से, सहमे से, फटी-फटी आँखों से
और बन्द होठों से जो ताकते हैं आसमान।
एक दूसरे को देख डरते हैं अपने से,
अपनी ही छाया की आकृति, विचार से,

चाहते जो रुक जाय गति इस काल की,
नाश भरे व्याल की, जो फनफना उठता है
लैबोरेटरी में बन्द, गर्जन बन वाणी में,
क्रोध बन आँख में ।
अणु, जिसका प्रसार सृष्टि यह शोभा की,
रूप सौन्दर्य की, मानव विकास की,
उसका प्रलय-रूप खोज लिया तुमने ?
हाय यह क्या किया, कितना बुद्धि-श्रम हुआ,
श्रम हुआ सफल समस्त सृष्टि-नाश में ?
जैसे हम मानवों का एक ध्येय, एक लक्ष्य ,
जीवन संपूर्ण का विनाश पुरुषार्थ है ।
मारोगे, मारो पर, जिला भी सके हो क्या ?
मारने का अधिकार, अधिकार भ्रान्त है ।
जीवन दो, जीवन दो, जीने की माँग यह
शान्ति दो प्रभूत शान्ति मानव की माँग है ।
कातर सी दृष्टि इस सृष्टि की है माँगती—
माँगती है रोम-रोम जीने का वरदान ।
एक दान जीने का, एक दान प्राणों का,
ग्रह-ग्रस्त मानव को दो, एक वरदान !
मानवमूल--भावना में रहती है स्थायी शान्ति—
शान्ति है प्रकाश उच्छवास प्राण सृष्टि का,
शान्ति है परम शक्ति, शान्ति शुद्ध-अनुरक्ति,
सात्विक धन मानव का अदानवीय यह भक्ति,
शान्ति-दीप ज्वलित करो, शान्ति को समूहित करो,
हित करो सृष्टि का, समस्त लोक-लोक का ।

गाता आ रहा है युग शान्ति का परमगीत—
आदि मनु की पुकार शान्ति के बसन्त से।
शान्ति दो, परम शान्ति जल स्थल जीवन को,
शान्ति का प्रकाश करो, युद्ध का तिमिर हर ।

बल भरो वाणी में, शक्ति भरो प्राणों में,
गूँज उठे आसमान, धरती के कण-कण—
जाग उठे, शान्ति की हवायें बहें रोम-रोम,
लहराये निखिल व्योम ।
बल भरो वाणी में, पुकार भरो प्राणों में,
थर्रा उठें पंच भूत, काँप उठे स्वार्थ सब ।
गर्राये हुए हैं जो मदी अधिकार-पुंज—
शक्ति-दृप्त खून के पिपासू अधिकार-अंध,
बल भरो वाणी में, पुकार भरो प्राणों में,
जाग उठे मानव के मन में प्रसुप्त गान ।
युद्ध के विनाशी घन, छितरा कर उड़ जायँ,
जुड़ जायँ मन प्राण समता में सृष्टि के ।
बल भरो वाणी में, पुकार भरो प्राणों में
कण-कण सृष्टि में शान्ति रूप लहरायें ।
अब नहीं, आगे को भी सदा के लिये ही युद्ध—
बन्द होंगे, बन्द होंगे, बन्द होंगे, कहे जायँ ।
शान्ति है हमारा धन, शान्ति है हमारा ध्येय,
शान्ति है हमारी प्रिय, शान्ति ही विधान है ।
बल भरो वाणी में, पुकार भरो प्राणों में—
शान्ति हो वचन-मन तन-तन प्राण-प्राण ।

हिमालय का संदेश

दिनकर

(चिन्ताव्यंजक संगीत)

कवि

तर्क से तर्कों का रण छिड़ा, विचारों से लड़ रहे विचार,
ज्ञान के कोलाहल के बीच डूबता जाता है संसार।
और सबका उलटा परिणाम, बुद्धि का जितना बढ़ता जोर,
आदमी के भीतर की शिरा हुई जाती कुछ और कठोर।
ज्ञान के मरु में चलता हुआ आदमी खोता जाता है,
हृदय के सर का शीतल वारि और कम होता जाता है।
बुद्धि-तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान,
चेतता तब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान ?

(बाँसुरी का आशाव्यंजक संगीत)

पहला स्वर

तेज करो मत धार चंचु की, विष की बात न बोलो,
बाज-पंख से बँधी कटीली तलवारों को खोलो।
बरसाओ मत आग नयन से, शीतलता छाने दो,
ऊपर उड़ते हुए हंस को भू पर अब आने दो।
बीत चली गर्मी, पावस के आने की बारी है,
शान्तिदूत के स्वागत की घर-घर में तैयारी है।

(दूरागत समवेत गान)

दाह भू का हरो, पन्थ शीतल करो,
विश्व का सर भरो वारि की धार से;
ओस का जाल दो, चाँदनी डाल दो,
आदमी का हृदय सींच दो प्यार से।
शान्ति के हंस को, धर्म-अवतंस को,
अंक में लो, इसे प्रेम दो, मान दो;
हो जहाँ भी जहर, क्षीर की दो लहर,
बाण की नोंक पर फूल को तान दो।

दूसरा स्वर

(विद्रूप हँसी के साथ)

शान्ति !!
कहीं दूध के बिना तरसती मानव की सन्तान,
कहीं क्षीर के मटके खाली करते जाते श्वान।
कहीं वसन रेशम के सस्ते, महँगी कहीं लँगोटी,
कोई घी से नहा रहा, मिलती न किसी को रोटी।
इस समाज की एक दवा है आग और उत्क्रान्ति।
शान्ति !!

तीसरा स्वर

हिंसा नहीं, हिंसा नहीं।

नर में छिपी जो आग है, उसको न उत्तेजित करो,
जितना बने, संसार में माधुर्य, शीतलता भरो।
है क्या उचित नर को चलाना लाठियों के ज़ोर से?
सकता कभी हो व्यक्ति का मन तृप्त नीति कठोर से?
बदला जगत का ध्येय, साधन भी बदलना चाहिए

तज कर घृणा, नर को प्रणय-पथ पर निकलना चाहिए।
बदलो मनुज को यों कि वह अपनी कमी पहचान ले,
तुम चाहते जो कुछ, मनुज उसको हृदय से मान ले।
जंजीर कसते हो जहाँ, वह आदमी की देह है,
बसता जहाँ मन, वह बहुत भीतर हृदय का गेह है।
मन तक पहुँचने को नहीं यह लौहमय रथ चाहिए,
इसके लिए तो गंध-स्यन्दन, फूल का पथ चाहिए।
करके दलन नर में जगाओ बन्धु, प्रतिहिंसा नहीं।
हिंसा नहीं, हिंसा नहीं।

चौथा स्वर

वृथा है यह पावन उपदेश।
हिंसा नर की मलिन वृत्ति है, किसको यह अविदित है?
नर के विमल शील की महिमा किस पर नहीं विदित है?
किन्तु शिला को भेद नहीं पाती जब प्रेम-पुकार,
खुलता नहीं द्वार अन्तर का, विनय मानती हार।
तब मनुष्य की भुजा पराजय वाणी की हरती है;
तोड़ लौह-अर्गला द्वार का उन्मोचन करती है।
हिंसा है तब तक जब तक नर में पशुत्व है शेष।
व्यर्थ है यह पावन उपदेश।

कई स्वर

(समवेत गान)

भूख लगी है, रोटी दो।
मन में नहीं प्रदीप हमारे, तन में दाहक आग,
हम न जानते हिंसा-प्रतिहिंसा का यह खटराग।

जिनका उदर पूर्ण हो वे सोचें चाह जो बात,
हम भूखों को सिर्फ चाहिए एक वसन, दो भात
भूख लगी है, रोटी दो।

पाँचवाँ स्वर

(सोचने की मुद्रा में)

"भूख लगी है, रोटी दो।"
कितनी कड़ी,मगर, कितनी सच्ची है यह आवाज !
रोक सकेगा इसे कहाँ तक कोई शाही ताज !
"भूख, लगी है, रोटी दो।"
सच है, अगर लोग भूखे हैं, भूख मिटानी ही होगी,
चाहे मिले जहाँ लेकिन रोटी तो लानी होगी।
"भूख लगी है, रोटी दो।"
सच तो है, रोटियाँ नहीं तो क्या ये कविता खायेंगे ?
थाली में धरकर विराट कवियों के गीत चबायेंगे ?

छठा स्वर

इन घेरों को दूर करो।
मन के चारों ओर लकीरें, नहीं सोचने भी दोगे ?
रोटी देकर क्या चिन्तन का भी अधिकार छीन लोगे ?
अजब मुसीबत! पहले तो रोटी को जन बिललाता है,
और रोटियाँ मिलीं अगर तो मन कैदी हो जाता है।
मन के ऊपर पड़े शिलामय प्राचीरों को चूर करो।
इन घेरों को दूर करो।

सातवाँ स्वर

चिन्तक, यह तेरा भ्रम है।
नहीं खींचते हम रेखाएँ, केवल राह बताते हैं।

बहके हुए विचारों को हम ठीक विन्दु पर लाते हैं।
चिन्ता सच्ची वही जो कि जन-जीवन में बल भरती है,
नर की बिखरी हुई शक्ति को भू पर केन्द्रित करती है।
मिलती कौन वस्तु जन-मन को इधर-उधर भटकाने से ?
पेट भरेगा कभी मनुज का गीत स्वप्न का गाने से ?
इस असंख्य भूखी जनता से तेरी कला बड़ी है क्या ?
जिस विलास का तू प्रेमी है, उसकी आज घड़ी है क्या ?
पाप-पुण्य की कड़ी, कल्पना नरक-स्वर्ग की टूट चुकी,
देख, मनुज के नये भाग्य की किरण गगन पर फूट चुकी।
इस मनुष्य का धर्म स्वेद है, ईश्वर अविश्रान्त श्रम है,
समझ नहीं पाता इसको तो चिन्तक, यह तेरा भ्रम है।

छठा स्वर

समझता हूँ, लेकिन क्या करूँ ?

नीचे खिलते फूल और ऊपर जगमग तारे ,
मिट्टी और गगन मुझको तो दोनों ही प्यारे हैं।
मृत्ति न हो तो मूल पुष्प का किसमें करे निवास ?
खिले कहाँ पर सुमन, नहीं ऊपर हो यदि आकाश ?
किन्तु, गरज उठतीं विपत्तियाँ जिस दिन जन-जीवन की,
कौन जानता व्यथा हाय, उस दिन चिन्तक के मन की ?
आँख फेर ले इस विपत्ति से, ऐसा कौन कठोर ?
तन से बँधें कला, पर, कैसे मन से नाता तोड़ ?
गगन भूमि में कैसे केवल किसी एक को वरूँ ?
समझता हूँ, लेकिन क्या करूँ ?

कई स्वर
(समवेत)

रोटी और अभय भी दो।
तन को दो आहार अन्न का, मन को चिन्तन का अधिकार,
तन-मन दोनों बढ़ें अगर तो चमक उठे, सचमुच, संसार।
बाधामुक्त करो मानस को, शंका-रहित हृदय भी दो।
रोटी और अभय भी दो।

(करुण वाद्य-संगीत)

कवि

विचारों की आँधी विकराल।
उठा रही मानस-समुद्र में चटुल ऊर्मि उत्ताल।
हिला रही लाकर झकोर में विश्व-विटप की डाल।
टकरा रहे समक्ष क्रुद्ध आदर्शों से आदर्श,
चढ़ता ज्यों-ज्यों समय, और बढ़ता जाता संघर्ष।
उड़ती है प्रत्येक दिशा में चिनगारियाँ कराल।
विचारों की आँधी विकराल।

(भीषण वाद्य-संगीत। धमाके से युद्ध के देवता के कूदने की आवाज़ और उसका अट्टहास।)

युद्ध-देवता

झन झन झन झन झन झनन झनन
झन झन झन झन झन झनन झनन।
है बड़ा जोर आदर्शों का, हलचल है खूब विचारों की,
चल रही रोज ही खोज शान्ति के नये-नये आधारों की।
पर देखें, शान्ति महीतल पर किस ओर क्षितिज से आती है,
मेरी कराल दंष्ट्राओं से पृथ्वी कैसे बच पाती है?

मेरी फुंकारों की ज्वाला, देखें, करता है कौन शमन !
झन झन झन झन झन झनन झनन।

मैं संग्रामों का देव मही को मरघट करने आया हूँ,
नर के मन को विद्वेष, घृणा, तृष्णा से भरने आया हूँ।
कहता हूँ, संचय करो, लूट भी, चोरी भी अर्जन ही है,
जैसे भी पाओ विभव, आत्मसुख का समस्त सर्जन ही है।
अपने विकास के लिए किये जाओ समस्त भू का शोषण।
झन झन झन झन झन झनन झनन।

मेरी शिक्षा का सार, एक अपनेपन का सत्कार करो,
जो धर्म, जाति, कुल हो अपना, तुम केवल उससे प्यार करो।
सबसे अच्छा विश्वास जिसे तुमने पुरखों से पाया है,
सबसे अच्छा है धर्म वही जिसको तुमने अपनाया है।
खुलकर विधर्मियों पर करते जाओ हालाहल का वर्षण।
झन झन झन झन झन झनन झनन।

तुम जिसे मानते आये हो, उद्देश सभी से अच्छा है,
जन्मे हो जहाँ, जगत भर में वह देश सभी से अच्छा है।
तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाति, सदा यह हठ पवित्र करते जाओ,
इस अहंकार के पालन में मारते और मरते जाओ।
जो नहीं मानता हो तुमको, ठानो उस अभिमानी से रण।
झन झन झन झन झन झनन झनन।

मेरा संकल्प, महावसुधा को एक नहीं होने दूँगा,
मैं विश्वदेवता का भू पर अभिषेक नहीं होने दूँगा।
रेखाएँ खींच महीतल के सौ खंड युक्ति से काटे हैं,
देशों में अलग-अलग झण्डे मैंने न व्यर्थ ही बाँटे हैं।

इन झण्डों के नीचे पृथ्वी भोगती रहे अंगच्छेदन।
झन झन झन झन झन झनन झनन।

है कहाँ विश्व-मानव ? जो हैं, केवल स्वदेश के प्राणी हैं।
मानवता नहीं, मातृ भू की महिमा के सब अभिमानी हैं।
जब तक ये झन्डे फहर रहे, अभिमान नहीं यह सोता है,
देखें तो, तब तक विश्व-मनुज का जन्म कहाँ से होता है ?
मैं राष्ट्रवाद का सखा, कौन तोड़ेगा मेरा सम्मोहन ?
झन झन झन झन झन झनन झनन।

(अट्टहास करता है। पृथ्वी के कराहने की आवाज़)

कवि

यह प्रदाह ! यह रोर भयानक ! यह वेदना अषेश !
तू भी होगा सखा युद्ध का मेरे प्यारे देश ?
तृष्णा की पंकिल तरंग में तू भी खो जायेगा ?
या तेरा शुभ कलश कमल-सा ऊपर लहरायेगा ?
पड़कर इस भीषण झकोर में धीरज पाल सकेगा।
वसुधा को विष के विवर्त से वीर ! निकाल सकेगा ?
या तू भी चलते-चलते, आखिर होकर लाचार ?
वही राह पकड़ेगा, जिस पर विनश रहा संसार ?
शंकाएँ हैं बहुत, मगर, तब भी यह बात सही है,
दुनिया तेरी ओर किसी आशा से ताक रही है।
चन्दन के रथ पर चढ़ कर आनेवाला यह देश,
सब कहते हैं, लाया है कोई नवीन संदेश।

मूक न रह, टुक बोल, हिमालय !
लोचन के पट खोल, हिमालय !

अबकी बार जगत पायेगा
मन्त्र कौन अनमोल हिमालय !
जिस युग का विज्ञान वह्नि हो, विद्या धन की दासी हो,
जिसका शिल्प मृत्यु-पूजक, सभ्यता रुधिर की प्यासी हो।
उस युग का कल्याण कहाँ है ?
दुख से उसका त्राण कहाँ है ?
मूँदे जिसने नयन धर्म से
उसका फिर उत्थान कहाँ है ?
भागी जाती ज्योति, ज्ञान करता किसकी रखवाली है ?
सब-कुछ पाकर भी मनुष्य क्यों इतना खाली-खाली है ?
यह रहस्य बतलायेगा क्या ?
शंका-तिमिर हटायेगा क्या ?
उलट गया जो दीप उसे
सीधा करके दिखलायेगा क्या ?
योगेश्वर ! क्यों मची हुई इतनी अशान्ति भारी है ?
ले जाने को कहाँ जगत् को युग की तैयारी है ?

[पहाड़ के फटने की आवाज]

हिमालय

(१)

लिये अन्तर में व्यथा अथाह ।

हम भी तो दिन-रात यही सोचा करते हैं मौन,
पृथ्वी पर अवतरित हुआ आलोक नया यह कौन ?
पाकर जिसे बढ़ी जाती है और अधिक उद्भ्रान्ति,
अन्धकार के साथ दूर भागी जाती है शान्ति ।

चढ़ता ज्यों-ज्यों समय और बढ़ता है हाहाकार।
बड़ी विपद में आन फँसा है, सचमुच ही संसार।

(२)

दिशाओं में किरणों की धूम, धौंकता किरणों से आकाश,
गगन के रंध्र-रंध्र में बसा नये युग का प्रज्वलित प्रकाश।
जहाँ थी पहले थोड़ी छाँह, कुंज वे फूलों के भी गये,
कहीं पर भी द्राभा का लेश नहीं छोड़ेंगे पंडित नये।
रहस्यों में करते विश्लेष चली दुनिया ऐसे मग से,
महीतल से रूठी गोधूलि, चाँदनी विदा हुई जग से।
धूप का ऐसा तना वितान, अँधेरा कठिनाई में फँसा,
भागने को न मिली जब राह, आदमी के भीतर जा बसा।
सघन जब हो उठता है तिमिर, दृष्टि कुछ देख न पाती है,
ज्योति भी होकर सीमातीत अन्धता ही उपजाती है।
एक काली होती अन्धता, ज्योति से जो पलती है दूर,
एक उजली होती जो सदा ज्ञान से ही रहती है चूर।
आज जो लगी हुई है आग, ज्ञान के घर से आई है,
जगत की आँखों पर रोशनी, अन्धता बनकर छाई है।

(३)

कभी सोचा भी है, तुम क्या हो ?
बल के अहंकार में भूले, भरे नित्य रहते हो,
सुनता हूँ, अपने को अपना ईश्वर भी कहते हो।
करते हो बन दास यंत्र-चक्रों की नित्य गुलामी,
किन्तु, प्रकृति का कहते हो अपने को जेता-स्वामी।
नगरों को निर्मल रखने का ऐसा ढंग निकाला,
नदियों को कलुषित, समुद्र तक को दूषित कर डाला।

जीव-जन्तु को नशा, स्वच्छ कर डाला विपिन गहन को,
सब निचोड़ निस्तैल किये जा रहे मही के तन को।
लक्ष-लक्ष वर्षों के संचित खनिज लूट क्रम-क्रम से,
किये जा रहे रिक्त हृदय वसुधा का तुम निर्मम-से।
धरती का अन्तर खँगालना ही अब बड़ी प्रगति है,
हरियालियाँ जला कर ही अब करता जग उन्नति है।
यह संतुलन-विनाश प्रकृति का वृथा नहीं जायेगा,
आज दुखी है मनुज और कल निश्चय पछतायेगा।
करते नहीं प्रहार प्रकृति पर, गढ़ते क्लेश नया हो।
कभी सोचा भी है, तुम क्या हो ?

(४)

युगों में अद्भुत रूप तुम्हारा !
भू पर तुम-सा विज्ञ मूढ़ पहले न कभी आया था,
वसुधा पर अन्धा प्रकाश यह कभी नहीं छाया था।
नहीं वंशधर तुम अतीत के, नूतन योनि अपर हो,
जो न कभी पहले जन्मा था, वह बौद्धिक बर्बर हो।
ज्ञान तुम्हारा अन्धकार है, किरण तुम्हारी तम है,
धर्म तुम्हारा ध्वंस, पूज्य देवता तुम्हारा यम है।
छाने तुमने अमित लोक, पर, मन को कभी न छाना,
लाखों आविष्कार किये, पर, अपना मर्म न जाना।
दृश्य-दृश्य रटते-रटते कुछ ऐसे दृश्य हुए तुम।
आत्मदेवता के मन्दिर में भी अस्पृश्य हुए तुम।
छूट गई भाषा अदृश्य की अकथ कथा कहने की,
बकते-बकते भूल गये तुम महिमा चुप रहने की।
सतत-चारियो ! कभी-कभी रुक जाने में भी सुख .

अहंकार को भूल कहीं झुक जाने में भी सुख है।
देख लिया, नीचे पृथ्वी, ऊपर अनन्त अम्बर है,
अब तो मानचित्र में खोजो, कहाँ तुम्हारा घर है।
जान चुके, कर दौड़-धूप कुछ और न जान सकोगे,
अब आगे का भेद ठहर कर ही पहचान सकोगे।
बिना रुके मिलता न शान्ति का शीतल-कूल-किनारा।
युगों में अद्भुत रूप तुम्हारा।

(५)

कहें भी तो उससे क्या बात ?
अभी भूख से ही जो प्राणी तड़प रहा दिन-रात,
रोटी की चिन्ता में कटते जिसके सायं-प्रात।
दहक रहे भीषण क्षुधाग्नि से जिसके प्राण अभागे,
निर्दय है, दर्शन परोसता है जो उसके आगे।
रोटी दो, मत उसे गीत दो, जिसको भूख लगी है,
भूखों में दर्शन उभारना छल है, दगा, ठगी है।
रोटी और वसन, ये जीवन के सोपान प्रथम हैं,
नवयुग के चिन्तको ! तुम्हें इसमें भी कोई भ्रम है ?
व्यष्टि-समष्टि-विवाद व्यर्थ हैं, झगड़ा मनमाना है,
है समष्टि ही हार, व्यक्ति तो मोती का दाना है।
बूँदें जब गिरतीं समुद्र में, व्यथा कौन पाती हैं ?
सागर में मिलकर अगाध सागर ही बन जाती हैं।
आते सारे भाव व्यक्तियों के समाज से छन कर,
पुनः लौट जाते समष्टि में ही वे गायन बन कर।
जैसे मेघ धरा से उठ कर अम्बर पर घिरता है,
और वारि बन फिर वसुधा के ही तन पर गिरता है।

जहाँ व्यष्टि स्वाधीन अधिक है, नाश वहाँ छायेगा,
अनुशासन के बिना व्यक्ति कुछ प्राप्त न कर पायेगा।
झुक समष्टि के सम्मुख जिस दिन व्यष्टि दान देती है,
तभी व्यक्ति के भीतर करुणा-विनय जन्म लेती है।
भरो विश्व-सर में करुणा के कमल सहज अवदात।
कहें भी तो उससे क्या बात ?

(६)

वृथा मत लो भारत का नाम।
मानचित्र में जो मिलता है, नहीं देश भारत है,
भू पर नहीं, मनों में ही, बस, कहीं शेष भारत है।
भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जानेवाला,
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लानेवाला।
भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिसपर जलका न दाग लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
भारत है भावना दाह जग-जीवन का हरने की,
भारत है कल्पना मनुज को राग-मुक्त करने की।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है।
भारत वहाँ, जहाँ जीवनसाधना नहीं है भ्रम में।
धाराओं का समाधान है मिला हुआ संगम में।
जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम,
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम।
वृथा मत लो भारत का नाम।

(७)

साधना इस व्रत की भारी ।

पग-पग पर हिंसा की ज्वाला, चारों ओर गरल है ।
मन को बाँध शान्ति का पालन करना नहीं सरल है ।
तब भी जो नर-वीर असिव्रत दारुण पाल सकेंगे,
वसुधा को विष के विवर्त से वही निकाल सकेंगे ।
मना रहे क्यों, यह व्रतपाली केवल भारत होगा ?
शेष विश्व हिंसा-लिप्सा में, इसी भाँति, रत होगा ?
किसी एक को नहीं, बदलना होगा साथ सभी को,
करना होगा ग्रहण शील भारत का निखिल मही को ।
शमित करेगा कौन वह्नि प्रहरी का जाल बिछाकर ?
रोकेगा विस्फोट विश्व को बल से कौन दबा कर ?
तब उतरेगी शान्ति, मनुज का मन जब कोमल होगा,
जहाँ आज है गरल, वहाँ शीतल गंगाजल होगा ।
देश-देश में जाग उठेंगे जिस दिन नर-नारी ।
साधना इस व्रत की भारी ।

(८)

धर्म को, श्रद्धा को मत त्यागो ।

शील मुकुट नरता का सबसे बड़ी भव्यता का है,
नहीं धर्म से बढ़कर कोई मित्र सभ्यता का है ।
निरी बुद्धि के लिए भावना का मत दलन करो रे !
जो अदृश्य प्रहरी है, उससे भी तो कभी डरो रे !
शान्ति चाहते हो तो पहले सुमति शून्य से माँगो,
नवयुग के प्राणियो ! ऊर्ध्वमुख जागो, जागो, जागो !
धर्म को, श्रद्धा को मत त्यागो ।

गृद्ध लगे मँडराने

नरेन्द्र शर्मा

जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने,
फिर लोभी के मनोगगन में गृद्ध लगे हैं मंडराने !
सोच रहा है नफ़ाखोर कब गोली-गोले छूटें !
कब बरसें बम, कब बम के संग भाग्य अनेकों फूटें !
कब लालच की चीलें भू पर गोल बाँध कर टूटें !
कब वह जीतों को धोखा दें और मरों को लूटें !
फिर लोभी के मन को यों चिन्ताएँ लगी सताने,
जब से············

कब लाखों की जानें लेकर अपने लाख बनाऊँ ?
कब लाखों के घर उजाड़ कर अपना घर भर पाऊँ ?
मानवता की नींव हिलाकर अपने पाँव जमाऊँ,
कब अनगिनती दीप बुझा कर दीपावली मनाऊँ ?
लोलुप मन-मकड़ी दिन गिनता बिनता ताने-बाने,
जब से·········

राष्ट्र-धर्म के बिल्ले लेकर घर-घर बटवाएगा ।
विश्व-शान्ति के लिये गरजती तोपें ढलवाएगा ।
बारूदी विष-भरी सुरंगें पथ पर बिछवाएगा ।
कभी न जाएगा जिस पथ से हम को भिजवाएगा ।

लगा बावली दुनियाँ को वह राहें नई सुझाने ।
जब से............

फिर सोने का रंग मिलाएगा बनिया केसर में,
खूनी माणिक टँकवाएगा पूँजी के जेवर में,
फिर विष-बुझी कटार छिपाएगा अपने तेवर में,
दुश्मन ! दुश्मन ! चिल्लाएगा बैठा अपने घर में,
दुनियादार गवाँर लगे फिर राग उसी का गाने ।
जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने ।
फिर लोभी के मनोगगन में गृद्ध लगे हैं मँडराने ।

शान्ति की पुकार

अंचल

शून्य मन्दिर में न कोई वन्दना क्यों आज गाता ?
फूल किरणों के गुँथे कुन्तल लिये ऊपमा न आती,
सुन न पड़ती ज्योति-क्रीड़ा में खगों की नव प्रभाती,
पूर्व से हँसते हुए दिनकर न आकर दान देता,
स्वप्न-नयनों के न धोता जागरण का नव-विजेता,
शून्य मन्दिर है पड़ा, छाया तिमिर, वंदी पुजारी
बन्द है पट, एक भी दिखती न जीवन की चिंगारी;
आज कोई क्यों न प्राणों की सरस वीणा बजाता,
शून्य मन्दिर में न कोई वन्दना क्यों आज गाता ?
ऊँघती रहतीं लिये श्रंगार उजड़ी वीथिकायें
टहनियों में, भाड़ियों में व्यक्त पतझड़ की कथायें।
शुष्क मुरझाये कुसुम वीरान है सारा बगीचा
था जिसे निज रक्त से कितनी बहारों ने न सींचा ?
श्वेत पातों पर कमल की जल न सरसी का छलकता,
है वही प्यारा चमन कोई भला कह आज सकता ?
थाल पूजा का लिये निर्मल्य जीवन का न आता
शून्य मन्दिर में न कोई वन्दना क्यों आज गाता ?

धूप अक्षत औ अगुरु का धूम सुरभित चाँदनी सा,
नीर का अभिषेक, मोमी मोतियों में दामिनी-सा,
रजत-शंखों का महास्वर ध्वनित सागर-सा तरंगित
ढह गये हैं नाश में ये मुग्ध जीवित स्वप्न पुलकित,
उच्चरित होता न शत-शत मुक्त कंठों का जयी स्वर,
व्योम-चुम्बी अनिल क्रीड़ारत ध्वजा का नाद फर-फर,
आज माथे पर न कोई शांति का चन्दन लगाता,
शून्य मन्दिर में न कोई वन्दना क्यों आज गाता ?
क्यों किसी ने भी न अब तक दीप-पूजा का जलाया
आरती की वर्तिकाओं ने विभा से मुँह छिपाया,
सुन न पड़ती भैरवी की प्रज्ज्वलित ललकार साथी !
आज दिखती है न सेवानत शिरों की पाँत साथी !
आज सोये हैं कहाँ वे शान्ति के संकल्प वाले,
विश्व के त्राता विकल सर्वस्व दाता वे निराले;
बुझगई धूनी न कोई क्यों उसे फिर से जलाता।
शून्य मन्दिर में न कोई वन्दना क्यों आज गाता ?
हैं मुँदे लोचन प्रगति के ज्योति की अवरुद्ध धारा,
तोड़ता जो बाँध सीमा का वही पाता किनारा।
है मलिन वह रूप की छवि वह महा प्रतिमा विजय की
घेरती आती चतुर्दिक से महा आँधी अनय की।
बन गया जीवन पराजय और रोदन की कहानी,
रूप औ' सौन्दर्य के चारण सुकवि की मूक वाणी।
बंधनों के नीड में है देवता नव युग विधाता।
शून्य मन्दिर में न कोई वन्दना क्यों आज गाता ?

भूलों का प्रायश्चित्त

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

भूलों का प्रायिश्चित्त करो मेरे मन,

शूलों में फूलों का सौन्दर्य सँवारो !

जीवन की पगडण्डी टेढ़ी-मेढ़ी है, ऊबड़-खाबड़, फिसलन गिरने का डर है,
खूँखार भेड़िए रथ की राहें रोके, कान्तारों में फुफकार रहे गह्वर हैं।
पथ की दूरी को काट-छाँटना मुश्किल, रथ के घोड़ों को चहिए दाना-पानी,
यों ही पड़ाव पर डेरा करते-करते, हो जाय न जीवन गाथा नई पुरानी।
विश्राम लिया तो लुट जाएगा सम्बल, सूरज-चन्दा से गति की होड़ लगाओ,
पथ में जब चीखें स्यार दहाड़ें बब्बर, गति के गीतों में उनका नाद डुबाओ।
मन की सुघराई सबसे बड़ी नियामत, मन की कदराई सबसे बड़ी कयामत।
बालू से काढ़ो तेल, बियाबानों में बस्ती के दीपों का जाज्वल्य उभारो !

भूलों का प्रायिश्चित्त करो मेरे मन

शूलों में फूलों का सौन्दर्य सँवारो !

दुर्दमन तपन से तन के पीले पत्ते, झरने दो, जिससे मन की क्यारी,
अन्तः सलिला से सींचो मन का उसर, फूले-फैले उत्सर्गों की फुलवारी।
मंजिल तो जाने किसने देखी जानी, जीने का एक बहाना ही मिल जाए,
जिस पौधे को जीवन भर पाला-पोसा, अंतिम साँसों के साथ-साथ खिल जाए।

जीवन फल-सा पक जाए, दूसरे खाएँ, रिसरिस कर रस का मादक सार लुटाओ,
जो बीज मिल गया था मिट्टी में उस दिन, उसकी मिट्टी को फिर से बीज बनाओ।
विश्वास विश्व का सब से सुन्दर जौहर, पौरुष पृथ्वी की सबसे बड़ी धरोहर,
मनु के दीपक का स्नेह न चुकने पावे, जड़ रजकन का चेतन माधुर्य्य निखारो!

भूलों का प्रायश्चित्त करो मेरे मन,
शूलों में फूलों का सौन्दर्य सँवारो!

आग और फूल

गिरिजाकुमार माथुर

निकलती ही जा रहीं घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस फूल सी
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली,
वह आग की पीली शिखा
नीले धुएँ की धारियाँ घेरे रही
जिसके प्रथम आलोक को,
सीमान्त में जिसके रहे
पर्वत अन्धेरे के खड़े,
सुनसान की आवाज़
आती ही रही नेपथ्य से
जो निगल जाना चाहती थी
जिन्दगी के गीत को।
ज्वालामुखी के द्वीप सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलते हुए आधार हैं,

कमज़ोर मिट्टी की जड़ें
जमकर न जम पातीं कभी
उठते बगूले ज़ुल्म के दुःख के सदा
हर लहर पर आते नए भूचाल हैं
उजड़ा पड़ा यह द्वीप बिकनी की तरह
फिर फिर सदा
संघर्ष का अणुबम यहाँ जांचा गया ।
यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मन्थन-काल है
संक्रान्ति की घड़ियाँ बनीं हैं शृंखला
बन्दी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है फेन विष का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अन्तिम ग्रहण की छाँह में
आलोकहत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है ।
बस इसलिए वह उजड़ी धरा
वह फूल सूखा ही खिला
केसर बिना
वह आग की पीली शिखा
धुन्धली रही मन्दी रही
उज्ज्वल न पूरी परिधि को जो कर सकी
वह भस्म कर पाई नहीं
नीले धुएँ को व्योम से ।
वह भूमि किन्तु न मिट सकी

आगत फसल की राह में
वह फूल मुरझाया नहीं
रितु रंग लाने के अमिट विश्वास में
वह आग की पीली शिखा
उठती रही, जलती रही
आलोक-कन तम से बचा
वह अग्नि-बीजों को सतत बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए !

३५

सर्वे भवन्तु सुखिनः

जानकीवल्लभ शास्त्री

विश्व भर का हो भला !

विश्व भर को प्राप्त हो नव
ज्ञान नित नव-नव कला !

एक साथ हिलें-मिलें सब,
एक डाली पर खिलें सब;
एक 'गत' पर विश्व भर-का
एक स्वर का हो गला !

गगन में हो उदित नव-रवि
भुवन में प्रमुदित नवल छवि,
विश्व-भर हो चिर-किरण के
एक साँचे में ढला !

शान्ति-पथ

भारतभूषण अग्रवाल

वाचक : घनन-घनन, लो, घहराते हैं मेघ प्रलय के
विध्वंसों के दैत्य-चरण से धरा डोलती,
सहम उठी हैं दसों दिशाएँ आशंका से
आसमान के ज्योति-नयन मुँदते जाते हैं,
उफ़न रहा है सिन्धु, गरजती लहरें भीषण
चीत्कारों के हा-हा-रव से शून्य तड़पता !

वाचिका : विफल दृष्टि निरुपाय शक्ति, निस्तेज हृदय से
मानव यह व्यापार देखता कातर हो कर
रंग रूप की उसकी दुनियाँ डूब रही है
टूट रही हैं आज सभ्यता की दीवारें,
झुलस रही है सम्मुख संस्कृति की हरियाली,
युग-युग के जीवन-संचय पर मृत्यु-यवनिका
उतर रही है महानाश के अंधकार-सी !

सहगान : अंधकार ! अंधकार !
नभ में तूफान आज भीषण अपार !
अंधकार ! अंधकार !!

नागिन-सी लहरें फुफकारती हैं बार-बार
उठते बवण्डर में खो गया है संसार
मानव के जीवन का टूटा आधार !
अंधकार ! अंधकार !!
खिंचता है वास्तव, अब सपने हैं बेकार
भय का यह पाश हाय ! कितना है दुर्निवार
तम की, लो, जीत हुई, ज्योति गई हार !
अंधकार ! अंधकार !!

वाचक : ज्योति पराजित हुई आज सचमुच जीवन की
बाहर-भीतर अंधकार घिरता आता है
कच्चे रंगों के समान सारे मूल्यों का
लोप हो रहा है विनाश के कटु प्रहार से ।

वाचिका : यह विभीषिका देख रहा है मानव जड़वत,
उसके हाथों को दुविधा ने बाँध लिया है ।
आशंका की है कठोर बेड़ी पैरों में,
तनी हुई है विनत शीशपर खंग मृत्यु की,
धक्-धक् करता अंतर भय से काँप रहा है !

वाचक : इस अशान्ति के क्रूर त्रास से रक्षा का भी
कोई उसे उपाय सूझता नहीं कहीं पर,
बाधाओं को सदा चुनौती देने वाली
उसकी उज्ज्वल वाणी कातर नाद बनी है ।

मानव : प्राणों का गहन भार
गति प्रसुप्त, पथ विलुप्त, नयनों में अंधकार !
युग-युग का संचय रे ! खो गया
अंतर का साहस भी सो गया

आशा का नंदन-वन जल कर हो गया क्षार।
प्राणों का गहन भार

मन का आधार छूटने लगा
जीवन का तार टूटने लगा
निष्फल है हाय ! अब मेरी कातर पुकार।
प्राणों का गहन भार

वाचिका : क्या सच-मुच यह कातर वाणी है मानव की ?

वाचक : उस मानव की जिस ने अपने दृढ़ पौरुष से
गिरि-वन मरु से भरी धरित्री पर संस्कृति के
अमर चिन्ह अंकित कर डाले हैं, सागर पर
अपने यश की लीक खींच दी है चिर-लहरी ?
उस मानव की, जिसने फौलादी मुट्ठी में
वायु बाँध ली है ? जिस के इंगित पर बादल
वर्षा करते हैं ! जिसकी इच्छा पर पृथ्वी
रत्न उगलती है ? जिसकी सेवा में पावक
दास-भाव से लगा हुआ है ? जिसने जल से
विद्युत उपजाई हैं ? जिसने अपने बल से
नैसर्गिक तत्वों पर शासन प्राप्त किया है ?

वचिका : कल्प-कल्प के पौरुष विक्रम के प्रतीक ये
मानव के विज्ञान-ज्ञान क्या नष्ट हो गए ?
फिर क्यों मानव अंधकार से घबराता है ?
उस में क्षमता है जग को आलोक-दान की ?

वाचक : तूफानों की वह गरदन मरोड़ सकता है,
उसकी तनी भृकुटि पर लहरें नर्तन करतीं,

मेघ बिखर जाते हैं उसके कण्ठ नाद से,
सकल प्रकृति का स्वामी होकर जड़-तत्वों से
हो जाये भयभीत मनुज, फिर आर्त स्वरों में
करने लगे पुकार ? बड़े विस्मय का दिन है !

स्वर १ : पर प्रकृति तो आज भी है मनुज के आधीन
पा रहा विज्ञान भी उत्कर्ष नित्य नवीन
किन्तु फिर भी भूमि पर नित बढ़ रहा संताप
मनुज अपनी शक्ति से ही काँपता है आप ।

स्वर २ : विभव से सम्पन्न होता जा रहा प्रति देश
खिन्न, नीरस हो चला है किन्तु अन्तर्देश
मेघ संशय के, उठा है युद्ध का तूफान
स्वार्थ का सागर गरजता, विकल हैं जग प्राण !

सहगान : विकल हैं जगती के तन-प्राण !
मानव का विनाश करता है मानव का विज्ञान !
प्रकृति आज जिसकी अनुगामी
जो है अतुल शक्ति का स्वामी
अपने ही हाथों होता है अब उसका अवसान !
विकल हैं जगती के तन-प्राण !
जिसकी कीर्ति बसी कण-कण में
अणु तक हैं जिसके बंधन में
आत्मघात में खोज रहा है वह अपना कल्याण
विकल हैं जगती के तन-प्राण !

जिसने अपने कुशल करों से किया भूमि-शृंगार
जिसकी कला-कल्पना से उन्मुक्त हुए छवि-द्वार

आज वही करता विनाश के शस्त्रों का निर्माण !
विकल हैं जगती के तन-प्राण !

वाचक : दो-दो विश्व-महायुद्धों का शोणित-तर्पण
लेकर भी यह हिंसा का पशु तृप्त नहीं है,
देश-देश में 'नामहीन जन की समाधियाँ'
उसके मृत्यु-पर्व की भीषण याद दिलातीं,
हताहतों का आर्तनाद अब भी कानों में
गूँज रहा है, महानाश के दृश्य भयंकर
भूल न पाएगी मानवता किसी भाँति भी !

वाचिका : आज तीसरे महायुद्ध के नाम-मात्र से
वायु सिहरने लग जाती है, फूलों के मुख
मुरझा जाते हैं, नदियों के प्राण सूखते,
काली छाया से ढँक जाते हैं घर-आँगन,
पक्षी तक अपने नीड़ों में छिप जाते हैं,
माँ के शीतल अंचल की छाया के नीचे
कँपने लगते हैं अबोध शिशु आँखें मींचे !

वाचक : लेकिन फिर भी राष्ट्र-राष्ट्र के बीच भेद की,
विग्रह-भय-संशय की दीवारें उठती हैं,
जिनसे घिर कर आज मनुजता खंडित होती
होता जाता नए युद्ध का बीजारोपण !
एक-एक कर धीरे-धीरे हर कोने से
शस्त्रों की टंकार सुनाई पड़ती जाती,
हर प्रदेश को भय है अपने प्रतिवेशी से,
अपनी रक्षा के हित उसका दमन चाहता !

वाचिका : रणोन्माद की लहर फैलती है अब जग में,
मानव की हत्या के नित-प्रति नूतन साधन
आविष्कृत होते हैं, हिंसा के मन्दिर में
वह बलि-पशु के समान बेबस बन्दी है !
शान्ति और सुख सहज सुलभ हैं जिसे वही अब
अट्टहास कर आवाहन करता अशान्ति का !

वाचक : भय-संशय की इन काली घड़ियों में मानो
मानव किसी पूर्व-निश्चित विधान से प्रेरित
गिरता ही जाता है प्रतिपल गहन गर्त में,
अपने पर भी उसका वश अब शेष नहीं है।
बिद्ध चरण, शोणित से लथपथ सपने लेकर
वह विनाश की ओर हाय ! बढ़ रहा निरन्तर
एक, आज बस एक प्रश्न है सबके मन में,
"क्या न मिलेगी कभी मनुज को राह शांति की ?"

स्वर १ : क्या न पायेगा मनुज सचमुच कभी पथ शांति का ?
लील लेगा क्या उसे तूफ़ान यह भय-भ्रान्ति का ?
इस मनोरम विश्व का श्रृंगार क्या मिट जायगा ?
मनुज के मन से मनुज का प्यार क्या मिट जायगा ?
यह विश्व का प्रांगण विशद जो मनुज के हाथों सजा
ये सौध जिनपर उड़ रही है प्रगति-संस्कृति की ध्वजा
ये गृह-भवन-पुर-ग्राम जो हैं कान्ति के आवास-से
सचमुच बनेंगे एक दिन क्या कालमुख के ग्रास-से ?
यह अमृत-दुग्धा भूमि, रंगों की अमर चित्रावली
क्या डूबा कर ही रहेगी इसे हिंसा बावली ?

सहगान : ध्वंस-रथ पर
रक्त-पथ पर
जा रहा मानव !
मूल जीवन,
मृत्यु-गायन
गा रहा मानव !
आज हिंसा कर रही है गगन-भेदी नाद
गूँजती है चक्र-ध्वनि बनकर विषम-उन्माद
युद्ध का यह दत्य भीषण सारथी है अंध
स्वार्थ-भय के अस्त्र लिखते विषमगति के छंद
अब प्रलय का
दृश्य भय का
ला रहा मानव !
ध्वंस-रथ पर
रक्त-पथ पर
जा रहा मानव !

स्वर १ : पूछ रहा है विश्व अब करता करुण पुकार
कौन बचाये प्रलय से यह सुन्दर संसार ?

स्वर २ : मुक्ति शान्ति के पंथ का निर्देशक हो कौन ?
मौन भूमि आकाश भी, सभी दिशायें मौन !

स्वर ३ : किन्तु अभी आलोक की एक किरण अवशेष है
इतिहासों के शिखर पर उठता भारत देश है !

सहगान : जगा है फिर से भारत देश !
पूर्व क्षितिज पर अरुणिम आभा का नवीन उन्मेष

जगा है फिर से भारत देश !
कीर्ति-धवल हिमवान मुकुट है
विस्तृत शाद्वल सुख-संपुट है
गंगा-यमुना की धारायें
जिसके अन्तर को सरसायें
शीतल रस से ओत-प्रोत है जिसकी भूमि अशेष !
जगा है फिर से भारत देश !
सिन्धु तरंगित है चरणों में
अतुलित है जो उपकरणों में
ऊषा जिसकी अमर पताका
जो शाश्वत आधार विभा का
सदा संयमित और समन्वित जिसका अंतर्देश !
जगा है फिर से भारत देश !
श्री-शोभा है जिसकी दासी
क्षमा-शान्ति का जो विश्वासी
युग-युग के उत्थान-पतन का
साक्षी है जो जग-जीवन का
कोलाहल मय-जग को देता सदा शान्ति-संदेश !
जगा है फिर से भारत देश !

वाचक : शान्ति, प्रेम, मंगल की जननी भरत-भूमि यह
आदिकाल से मानवता का मिलन-तीर्थ है !
सदियों के सोपानों पर यह मंथर गति से
चलती रही प्रकाशित करती पूर्व दिशा को
अपनी पुण्य-प्रभा से । नैसर्गिक वरदानों
से इसने मानव का अंतर सहज सजाया,

फूल खिलाये मन में इसने विविध गुणों के,
संस्कृति की शीतल छाया में पीड़ित जन को
दुलराया है, इसके प्राणों की अमराई
कला-कोकिला के मीठे स्वर से गुंजित है !
युग-युग के कूलों पर इसकी गौरव-गाथा
सुर धनु-सेतु-समान समारोपित है सुन्दर !
नक्षत्रों में इसका मधु-संगीत ध्वनित है,
मेघों में इसके ही प्राणों का गर्जन है,
मानव के शुभ संकल्पों की यज्ञ-भूमि यह,
शान्ति-दायिनी धरती है यह शस्य-श्यामला !

वाचिका : शस्य-श्यामला धरती है यह, जहाँ मनुज ने
सबसे पहले अपना जय-केतन फहराया,
जड़-चेतन का केन्द्र, प्रकृति का स्वामी बन कर
मन के रंगों से जीवन को रूप दिया था !
निखर उठी थी सप्तसिन्धु से धुली धरित्री,
मीठे फल के कोष घने तरु छाया वाले,
अमृत-धान्य के खेत झूमते सुख-समीर में
दुग्धवती गोष्ठी गोधन की, पुष्ट प्राण-तन,
ग्राम-ग्राम में सचमुच कान्ति उतर आई थी !

वाचक : जीवन के रंगों का वह पहला उभार था,
भय-अभाव से प्रथम मुक्ति के साधन पाकर
सामस्वरों में उठे शान्ति के श्लोक सुहाने,
यज्ञ-धूम के नील मेघ रथ पर सुगन्ध के
जल-थल और वनस्पतियों की छाया करते,

ठौर-ठौर पर आश्रम, गुरुकुल, तपोवनों में
वेद-ऋचाएँ सौ-सौ कन्ठों से उठती थीं,

शान्ति-पाठ : ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथ्वी
शान्तिरापः शान्ति रोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः
शान्तिदेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि !
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

वाचिका : शस्य-श्यामला धरती है यह जहाँ कृष्ण ने
वेणुनाद से वसुधातल पर स्वर्ग उतारा,
दूध-भरे गोकुल की गलियों में घर-घर में
हास और उल्लास निवास किया करते थे !
पृथ्वी के उस सब से पहले जन-नायक ने
सहयोगी-सहभोगी जीवन किया प्रतिष्ठित !
यमुना की इन विमल मुस्कराती लहरों में
बसी हुई है अब भी मीठी शान्ति रागिनी,
ब्रज की इस अनुपम रज के कण-कण के मन में
रास-मिलन की रंजित छवि अब भी अंकित है !

वाचक : आगे चल कर इसी कर्मयोगी नायक ने
उत्तरपथ में न्याय-शान्ति की विमल पताका
फहराने के हेतु किया उद्यम आजीवन,
चक्रपाणि यह वंशीधर गीता का गायक
अर्जुन का ही नहीं, शान्ति का बना सारथी !

सहगान : वंशी बोल रही !
मिलन स्वरों से वह जन-युग का आँगन खोल रही !
वंशी बोल रही !

मुग्ध धरा है, मोहित अम्बर
सुख-सुधियों से पुलकित अन्तर
कर्म-भूमि के प्राणों में वह करुणा घोल रही !
वंशी बोल रही !

वाचिका : शस्य-श्यामला धरती है यह जहाँ बुद्ध ने
युग के संधि-द्वार पर करुणा-दीप जलाया,
राग, अभाव, जरा, जीवन के भेद खोलने
राजभोग से रची अटारी परित्याग कर
हिम-आतप-वर्षा का कण्टकपथ अपनाया !
गौतम का वह त्याग नए गौरव का धन था,
उसके मन में जन-जन के मन का क्रंदन था,
बरसों तक वह विकल भटकता बाहर-भीतर
ज्योति खोजता रहा प्रेम की, दिव्य शान्ति की !

वाचक : क्षमा, अहिंसा, करुणा का संदेश संजोए
बोधिसत्व की अमिताभा का वह अपूर्व
आलोक पूर्व का ज्योति द्वार है ! जिसके तोरण
तले दलित, पीड़ित मानव ने बंधु-मिलन का
पर्व मनाया। जिस की उज्वल चित्र रँगोली
साँची और अजन्ता की अनुपम-विभूति है !

सहगान : जगत की पीड़ा का उपचार
तुम्हारी करुणा का आलोक
जगा है तब से अब तक देव !
मिटाता भव के भय-दुख शोक !
अहिंसा व्रत के व्रती उदार
प्रकाशित तुम से अंतर्देश !

चीन से लेकर यव-पर्यन्त
तुम्हारा गूँज रहा संदेश !
तुम्हीं हो भारत के अभिमान
तुम्हारा तप वसुधा की कान्ति !
तुम्हारा जीवन है वरदान
तुम्हारी शरण अलौकिक शान्ति !

बालिका : शस्य-श्यामला धरती है यह जहाँ एक दिन
जलता देख कलिंग, यातना से व्याकुल हो,
भारत का सम्राट शान्ति के अन्वेषण में
चीवर-धारी भिक्षु बना था। अस्त्र-शस्त्र को
त्याग, धर्म के मिलन-सूत्र से नई एकता
संस्थापित की। प्रेमराज्य की विमल भावना
के द्रष्टा, युग-स्रष्टा प्रियदर्शी अशोक का
नाम शान्ति के सिंह द्वार पर स्वर्णांकित है !
लिखित शिलाओं के प्रस्तर-प्राणों में उसको
जन-मंगल की अमर भावना संरक्षित है !

सहगान : धर्म-प्रेम-शान्ति का महामिलन
दे गए अशोक लोक को शरण
मुक्ति का प्रशस्त पंथ है यही
यही समस्त सृष्टि का समुन्नमन !
आज भी अशेष कीर्ति गान है !
अशोक विश्व में जयी महान् है !
धर्म की प्रभा लिए शिला-शिला
कर रही अनन्त दीप-दान है !

वाचिका : शस्य-श्यामला धरती है यह, जहाँ शान्ति की
शुभ परम्परा अनुदित विकसित होती जाती,
हर्ष-शोक में, सुख-दुख में, उत्थान-पतन में,
निर्भय, गतिमय चरणों से इस शान्ति- पंथ पर
भारत के ये कोटि प्राण चलते जाते हैं !
इतिहासों के नयनों से यह वृद्ध हिमालय
इस विराट् जीवन-यात्रा को देख रहा है !
देख चुका है वह सुवर्ण-युग की श्री-शोभा,
देख चुका है वह इस भारत के सागर में
विविध सांस्कृतिक धाराओं का मंगल-संगम,
देख चुका है वह नदियों के तीर भक्ति की
उठती हुई हिलोर, शान्ति की शीतल वर्षा !

वाचक : और इसी धरती पर इसने प्रस्तुत युग में
अभिनव एक प्रयोग अहिंसा का देखा है !
देखा है इसने पशुता के लौह—पाश को
आत्म-ज्योति की किरणों के संमुख गल जाते !
दमन, दासता, शोषण, विग्रह और विषमता
ठहर न पाये सत्याग्रह के बल के संमुख !
हिंसा-भय के अंधकार में राष्ट्र-पिता ने
भारत की यह शान्ति-भावना जीवित रक्खी,
न्याय-अहिंसा द्वारा खोले जन के बंधन
दिया विश्व को शान्ति-मार्ग का शुभ निर्देशन !
वर्ग-वर्ण के, जाति-धर्म के भेद भूलकर
सर्व मिलन का, सर्वोदय का मार्ग बताया,
शान्ति यज्ञ सम्पूर्ण किया निज आहुति देकर !

सहगान :

हे अमर अभिराम !
तुमको आज मन करता अनन्त प्रणाम !
हे अमर अभिराम !

एक इंगित से तुम्हारे कट गया तम-पाश
फूटता है चरण-चिन्हों से अशेष प्रकाश
दीप-सा जलता तुम्हारा दान आठों याम ।
हे अमर अभिराम !

युग—पुरुष हे ! नव-समन्वय के प्रतीक उदार !
तप्त धरती पर बहाई विमल करुणा—धार
शान्ति—पथ पर अडिग पद से तुम चले अविराम ।
हे अमर अभिराम ।

वाचिका :

प्रतिपल घिरते आते भीषण अंधकार में
भारत की यह मर्म—भारती ही आशा की
एकमात्र आलोक—किरण है । यही एक है
मुक्ति—मार्ग जग के मानव का, भय-संशय से
ग्रस्त मनुजता की रक्षा का अंतिम पथ है !
आज जगा है भारत सदियों के बंधन से
मुक्त वायु में उसके प्राण निखर आये हैं ।
उसकी वाणी के स्वर उजले होते जाते,
धीरे—धीरे उसके द्वारा राष्ट्र-राष्ट्र में
प्रेम और सद्‌भाव अंकुरित, कुसुमित होंगे ।
उसके गतिमय योगदान से मानवता को
पुनः मिलेगा पथ प्रशस्त कल्याण, शान्ति का !
जड़-यंत्रों की ओट छोड़ कर जब मानव-मन

निर्भय होकर मुक्त धरा पर साँसें लेगा,
बंधु—बंधु से गले मिलेगा भेद मिटा कर ।

वाचक : शान्ति-पर्व के इस अपूर्व क्षण में हम सब भी
आओ, अपना धर्म निवाहें । हिंसा का तम
दूर करें अपनी वाणी से । प्रखर स्वरों में
करें घोषणा हमें नहीं संघर्ष चाहिए,
हम विनाश के दृश्य देखना नहीं चाहते,
युद्ध नहीं होने देंगे हम, भारत के जन
प्रेम-अहिंसा-सहजीवन के विश्वासी हैं !
कोटि-कोटि कण्ठों की यह शुभ-शान्ति-कामना
मानव-मन को आज नया आश्वासन देगी,
सुन्दर सपने सरसायेगी जन-जन-भविष्य के ।
भारत की यह शान्ति-कामना वसुधा तल पर
विश्व-मिलन के नवयुग की भूमिका बनेगी !

सहगान : गूँजें भारत के प्राण !
बने यह जीवन स्वर्ग-समान !
मेघ के मङ्गल-कलश भरें,
घरों में सुख की वृष्टि करें !
दिशाओं की रंगीन ध्वजा,
गगन के शिखरों तक फहरें !

मिलन—यात्रा के बन पदचिन्ह
धरा पर आयें साँझ-विहान !
बने यह जीवन स्वर्ग—समान !

कलह का कोलाहल सो जाय
अविद्या के तम को धो जाय
प्राण का, जीवन का नव–रूप
युगों की जयमाला हो जाय !
कोटि–कण्ठों का नाद लिये
उठे जब साम–स्वरों में गान !

बने यह जीवन स्वर्ग समान !
गूँजें भारत के प्राण !

शान्ति का सबेरा

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

देख रहा हूँ-भागी जग से
भूख गरीबी की अँधियारी
और बहुलता की छटकी है
चारों ओर चाँदनी प्यारी,

वह अभाव जो काल-देव सा
हमें लील जाने को तत्पर
भाग गया है दुबका दुबका
पिटे हुए पिल्ले सा सत्वर,

गये प्राण वे दिन, जब सिर पर
बेकारी की खड्ग लटकती,
औ' ऊबड़-खाबड़ राहों में
जीवन शक्ति अजान भटकती,

चार घड़ी को ऊँचे टीले
सूरज का आलोक निराला
औ' फिर गहन गर्त्त था जिनका
तिमिर अमावस का सा काला।

कभी नौकरी, रोटी, कपड़े
और कभी फ़ाक़ों पर फ़ाके
दिन दिन करना खोज काम की
रातों सो रहना गम खा के।
जीवन-यापन को आवश्यक
चीज़ नहीं रहीं दुर्लभ अब
बच्चों का पालन पोषण भी
प्राण होगया सब को सम्भव।
देख रहा हूँ—युग युग पर फिर
माँ ने माँ का गौरव पाया
फूलों से शिशुओं ने हर घर
सचमुच है गुलज़ार बनाया।
शिशु-गृह खुले नगर गाँवों में
साथ मिलों औ' खलिहानों के।
बच्चों के लालन-पालन से
चिन्ता-रहित श्रमिक खानों के।
गली-गली में खुले मदरसे
अन्धकार की टूटी कारा
शिक्षा जा पहुँची गाँवों में
धनी-वर्ग का मिटा इज़ारा
निज श्रम के धन से अब श्रमकर
घर के काम चला सकते हैं
बच्चों पर निर्भर रहने के
बदले उन्हें पढ़ा सकते हैं।
देख रहा हूँ—मनोयोग से

निर्धन बच्चे पढ़ते हिल मिल
गन्दे जौहड़ के कीड़ों से
कल तक थे जो करते किलबिल,
क्या जाने इनमें से किसकी
प्रतिभा छू ले नभ के दामन
रण को या साहित्य-गगन को
निज प्रतिभा से कर दे रौशन ?
क्या जाने इनमें से कोई
बने बड़ा दर्शन का वेत्ता
और कौन विज्ञानोदधि में
रहे बुद्धि की नौका खेता ?
कौन प्रकृति के भेद खोलकर
मानव की मुट्ठी में भींचे ?
कौन सितारे तोड़ डाल दे
जन-जन के पैरों के नीचे ?
किसकी प्रतिभा चंचल होकर
छनका दे रस-डूबे पायल
और कौन मृदु स्वर से कर दे
सुगम थके-हारों की मंजिल ?
कौन सफल अभिनय से अपने
भेद खोल दे मानव मन के !
निज कौशल से प्रश्न गँठीले
प्रस्तुत कर दे सम्मुख जन के !
युगों-युगों से व्यर्थ पड़ी सी
अवसर पाकर जागी प्रतिभा

भिन्न दिशाओं से उन्नति की
मुक्त पवन सी भागी प्रतिभा।
गये प्राण वे दिन जब खिलते
व्यर्थ विजन में फूल मनोहर
औ' अजान सागर के तल में
सोते अनुपम मोती सुन्दर।
सामूहिक चेतना जगी है
प्रतिभा व्यर्थ नहीं मुरझाती
ढूँढ़ी जाकर, अवसर पाकर,
जन के हित में होड़ लगाती।
नया रक्त पा लाल बने, जो
फूल हुए जाते थे पीले
तेज कर सब संकोच खिले हैं
गुल सिकुड़े सिमटे शर्मीले।
देख रहा हूँ निश्चित राहें
निश्चित अब जीवन की मंज़िल
खुली जा रहीं सिकुड़ी बाँहें
सहमे से जीवन की प्रतिपल।
पत्थर बनकर नहीं गले में
बँधे दीखते—घड़ियाँ, छिन, पल
सतत बह रहे जीवन सरि में
मास और वर्षों से उत्पल।
गये प्राण वे दिन जब दुनिया
बनी हुई थी रात पूस की
और ज़िन्दगी अपनी उसमें

अध-नंगी झोपड़ी फूस सी।
देख रहा हूँ—नया सवेरा
निशि की ठिठुरन सहलाता है
विस्मित झोंपड़ियों के आंगन
नये नूर से नहलाता है ।

बोलों के देवता

सुमित्राकुमारी सिनहा

बोलों के देवता !
बोल कुछ ऐसे बोलो !
ऐसे बोल कि
जिनके शब्दों में अमरत्व सिन्धु लहराए,
ऐसे बोल कि
जिनको सुनने उच्च हिमालय शीश उठाए,
ऐसे बोलो: युग की साँसों में लय मधुता तुम घोलो।
सूझों के अंकुर
उन्मादों की उर्वर धरती पर फूटें,
कहीं न कोमल कला-कुसुम
नव कठिन ज्ञान के हाथों टूटें,
अन्तरात्मा-कलाकार ! मत निज को बुद्धि तुला पर तोलो,
करो मूकता की अर्चा
तुम व्यथा-अश्रुओं को न गिराओ,
उन्मादी बलिदान-पंथ पर
फूलों जैसे शीश चढ़ाओ,
बोलों के देवता
वाणी-घट में भरे वेदना-रस, जीवन सिंचित कर डोलो।
बोल कुछ ऐसे बोलो !

शान्ति का मोर्चा

नागार्जुन

नहीं लाम पर
नहीं मुहिम पर
बम बरसेंगे अनाकीर्ण आबादी पर ही
निरपराध निर्दोष निष्कलुष—
बाल-वृद्ध वनिताओं की ही जान जायगी
ताज़ा-ताज़ा खून बहेगा...
उस पवित्र शोणित धारों में नहा-नहाकर
खाज मिटाना चाहेंगे कोढ़ी कुबेर दस-बीस-पचीस-पचास
जिनकी दुर्गंधोंके मारे घुटा जा रहा मानवता का श्वास
कहाँ गिरेंगे ऐटम या हाइड्रोजन बम ?
शान्ति निरीह नगर- ग्रामों पर
खेतों-खानों-खलिहानों पर
सुन्दर सुभग सृष्टि रचने में व्यग्र व्यस्त बे-मान हज़ारों दस्तकार पर
शत-सहस्र बर्षो की संचित सूझ-समझ के फल स्वरूप उपलब्ध—
शिल्प के ललित-अमोलक चमत्कार पर
ताजमहल की मीनारों पर
गंगा-यमुना के संगम पर

नागार्जुन

अक्षयवट की शाखाओं पर
सारनाथ के नवनिर्मित सुन्दर बिहार पर
हरित-भरित तिरहुत जनपद पर
आम-जामु-लीची-कटहल के उद्यानों पर
झारखंड के नृत्यनिरत उत्सवनिमग्न संथालजनों पर
रविठाकुर के कलाकेन्द्र पर
शान्त सुभग नर्वदा तीर पर
भूमिस्वर्ग कहलाने वाले काश्मीर पर
केरल-कोंकण-कच्छ-कुर्ग पर
कामरूप-काठियावाड़ पर
सोमनाथ पर
विश्वनाथ पर
उज्जयिनी के महाकाल पर
कन्नड़ के प्रतिमा-प्रकाण्ड उस बाहुबली पर
बड़े-बड़े विद्यापीठों पर
कलातीर्थ के छोटे-बड़े सभी स्थानों पर...
खीझ-खीझकर टरूमैन के नाती-पोते-चेला-चाटी
बरसावेंगे अपने ही हाथों ऐटम बम
सुन न रहे हो सर्वनाश का शंख !
फड़-फड़-फड़-फड़फड़ा रहे हैं आसमान में महाप्रलय के पंख
सोचो समझो मित्र, बताओ क्या विचार है ?
स्वयं सयाने हो, न कहो : कल्पित विभीषिका का प्रचार है
शान्ति चाहिए, त्राण चाहिए
तुमको हमको सबको ही कल्याण चाहिए
दानव है वह, चाह रहा एकाकी जो सेना बटोरना

गीधों को ही आता है लाशें अगोरना
हमें नहीं कांटे पसन्द हैं
सड़े घाव में चीर-फाड़ करना ही होगा
खुजालाई फिर धनपतियों की कोढ़, जंग छिड़ने वाली है
तो क्या हम तुम ईंधन बनकर समरानल में झोकेंगे फिर अपनी काया ?
नहीं नहीं सो कैसे होगा !!
अजी हमें तो शान्ति चाहिए
एक नहीं हम कोटि-कोटि हैं, लाख-लाख हैं,
अक्षयवट के सदावसन्ती अमरशाख हैं
ऐटम बम तो ऐटम-बम है
गोबर-बालू की पिंडी तक अकर्मण्य क्या बना सकेंगे—
लक्ष्मीवाहन ढुंढिराज निर्वीर्य वृथाजन्मा धनपतिगण ??
नहीं बनेगी सर्वनाश का वाहन विद्या कला और संस्कृति इस युग की
अकर्मण्य फिर क्या कर लेंगे !
जिनके जीवन का अवलम्बन
युद्ध मात्र ही एक बच रहा
उन्हें शान्ति से डर न लगेगा तो क्या होगा !!
खेल न समझो मित्र इसे तुम
मत समझो अभिसंधि इसे तुम लालरूस की लालचीन की
चरम शान्ति चाहने वालों का यह अपूर्व अभियान
अप्रतिहत अभियोग
रुक न सकेगा कभी किसी भी ओर
पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन...
इस पवित्र पंडुक की छाया से न अछूता बचा रहेगा जगका कोई छोर
"कहीं ध्वंसके हेतु कथंचित्

ऐटम बम का कर न सकेगा कोई भी उपयोग
बना पायगा नहीं किसी को कोई कभी गुलाम..."
युद्धविरोधी स्त्री-पुरुषों का यह पवित्र संकल्प—
दिशा-दिशा से आने वाला यह पवित्र उद्गार—
कंठ-कंठ से उठने वाला यह अदम्य उद्घोष—
बाल-वृद्ध सबमें करता है नव-आशा-संचार।

शान्ति का गीत

केदार

उजाला न रूठे, अँधेरा न आये ।
युगान्तर सबेरा करे मुसकुराये ॥
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

कली धूप पी कर पली जो पवन में,
खिली है हमारे-तुम्हारे नयन में,
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

धरा प्यार की लोरियां गुनगुनाये ।
हवा का हिंडोला हृदय को झुलाये ॥
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

हवा में हिल धान के पेड़ झूमें ।
बड़े प्रेम से एक को एक चूमें ॥
इसी के लिए शाँति के गीत गाओ !

नदी का बजे जल मधुर से मधुरतम ।
कि नाचे लहर की गुजरिया छमाछम ॥
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

गगन के करोड़ों चमकते सितारे ।
हमारे दियों पर रहें प्राण वारे ॥

इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

दिगम्बर दिशाएँ स्वयम्बर रचायें ।
भुजाएँ पुरुष की प्रकृति को सजायें ॥
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

सुधाकर कलाधर धरा पर उतर कर,
कलाएँ ललित से बनायें ललिततर ।
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

कबूतर दिवस के उजाले परों के,
रहें आत्म-संगी हमारे घरों के ।
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

मशालें चलें, चीर डालें शिलाएँ ।
उजाला पियें मुस्करायें दिशाएँ ॥
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

रुई जो मुलायम धुनी जा रही हैं ।
हमारे लिये दीर्घ दुख पा रही है ॥
इसी के लिए शान्ति के गीत गाओ !

परित्याग कर दे भिखारी पराश्रय ।
कुदाली चलाये, न बैठे निराश्रय ॥
इसी के लिए शान्ति के गीत गाओ !

कहानी बने जिन्दगी की कहानी ।
नये आदमी की निखरती जवानी ॥
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

नयी आग ही दाल-रोटी पकाये ।

पड़े पेट में पत्थरों को पचाये ।।
इसी के लिए शान्ति के गीत गाओ !

पिया की पुजारिन मिले जा पिया से ।
नदी-सा उमड़ के छलकते हिया से ।।
इसी के लिए शान्ति के गीत गाओ !

रंगीले खिलौने नजर में समायें ।
मिलें लाड़लों को, हृदय को चुरायें ।।
इसी के लिए शान्ति के गीत गाओ !

नये नीड़ पंछी बनायें हजारों ।
पखेरू नये जन्म पायें हजारों ।।
इसी के लिए शान्ति के गीत गाओ !

न अन्याय जीते, न नव न्याय हारे ।
प्रवंचक नहीं हों युधिष्ठर हमारे ।।
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

करोड़ों करों से बहे कर्म-धारा ।
धरा हो किनारा-गगन हो किनारा ।।
इसी के लिए शांति के गीत गाओ !

अमंगल न पल हो, न मानस विकल हो ।
सदा कर्म कल्याण, मानव सफल हो ।।
इसी के लिये शान्ति के गीत गाओ !

मुँदे पंकजों की खुले नाट्य-शाला ।
सुखी आदमी की बने भाग्य शाला ।।
इसी के लिये शांति के गीत गाओ !

शान्ति के स्वर

भवानीप्रसाद

मैं पथ पूछ रहा हूँ।
जिससे पूछो वही बताता है अपना पथ
अच्छा। सोच रहा हूँ इन में झूठा कौन
कौन है सच्चा!

बीज कि जैसे पौष-माघ में या कि
सख्त जलते निदाघ में, दबा हुआ
माटी के नीचे, स्वप्न-सौख्य में अंकुर
मींचे सोच रहा होता है फल की बात
फूल की बात, सुनहली किरन, रूपहली
रात—इसी तरह शायद सबका
पथ ठीक!

पड़ जाए जहाँ पर बीज वहाँ है खेत,
पड़ जाए जहाँ पर पाँव वही पथ हो!
जड़ से फूल नहीं कह सकता 'खिलो;
या कि नहीं कह सकते पत्ते 'हिलो'!
फल कह सकता नहीं कि फेंको बीज।

जड़ लेती ही लेती हो ऐसी बात नहीं ;
हो सुबह सजीले की दुश्मन इतनी
नालायक रात नहीं। वह किसी एक
निश्चित कारण से आती है ; उसका
आना है ठीक जरूरी और प्यारा !

अय, हमें चाहिए अँधियारा और
फिर प्रकाश ! इसलिए न अपना
काम दूसरों पर डालो ; यह मानवता
का बाग इसे देखो-भालो !

अय, मूल और अय फूल और फल-
पत्तो, बद मस्त न हो जाना ; हस्ती
है होश ! तुम जहाँ खड़े हो वहीं
काम हैं शत ? जड़-पीड़ फूल पत्ते
सब श्रम में रत !!

बनाना तोड़ने से कुछ बड़ा है
हमारे जी को हम ऐसा सिखाएँ ;
गढ़न के रूप की झाँकी सरस ?
वही झांकी जगत को हम दिखाएँ !
बखेरे बीज ज्यादा प्यार ही के
कहीं बो काँस से लड़ना पड़ेगा
हमें इस आज के संघर्ष में से
सनेही-शान्ति तक बढ़ना पड़ेगा।
लड़े कोई तो लज्जा में गड़े वह

भवानीप्रसाद मिश्र

न लड़ने का उसे गुन-गान सूझे,
घृणा को आँख का करके सितारा,
अजल से आज तक सौ बार जूझे !

मगर उस जूझ से कुछ भी न सुधरा।
हमेशा बात बिगड़ी है जियादा ;

तो इसकी गाँठ अबके बाँध ले, हर
हमारे देश का फर्जी, पियादा !!

तुम ज़रा समझकर देखो इसको
मेरे मन, तुम कितनी ज्यादा
उथल-पुथल में रहते हो ! तुम
बहते हो सुख-शोक लहरियों में
कितने ! तुम कहीं जरा थमकर
देखो, रुककर देखो ! कितने व्याकुल,
हो तुम बढ़ने की ईप्सा में तुम ज़रा
खत्म होकर देखो, चुक कर देखो !

बढ़ना ही केवल लक्ष्य नहीं, रुककर
रह जाना भी कुछ है ; हर एक
कठिन आघात कि प्रत्याघात—
हीन-साँसों सह जाना भी कुछ
है !

जीवन-सरिता को सिन्धु अगर—
मिल नहीं सके, वह केवल बहती
चले शान्ति-आश्वास-हीन, तो
उस प्रवाह की क्लांति-सनी

लाचारी से क्या चीज़ दीन !
तुम ज़रा समझकर देखो इसको
मेरे मन, यह दिशा सिन्धु की
नहीं किसी मरुथल की है, तुम
ज़रा रुको और मुड़ जाओ ।
यदि सिन्धु नहीं तो किसी
नर्मदा में, गंगा में जुड़ जाओ,
अय बिन्दु सुनो ! ये सिन्धु-गामिनी
धाराएँ हैं सिन्धु, सुनो !!
हम आज भले इकाकी हों; मुमकिन
हो सकता है कि हमारे स्वर इस क्षण
चीत्कार और गर्जन-तर्जन में डूब
जायँ; संभव हो सकता है कि हमारे ही
साथी इस शोर और गुल को सम्भव
सुविधा मानें; वे शान्ति- स्नेह की
झंकारों से ऊब जायँ; वे कहें, पड़ौसी
की छाती से खून, लगाकर मुँह
पी चलना श्रेष्ठ चीज; वे कहें कि
बोने के खातिर खुदगरजी, शोषण
और हिंसा हैं श्रेष्ठ बीज, वे
कहें, 'सभ्यता, सुख, समृद्धि
फैलाने का ठेका अपना
वे कहें कि अपने हाथों ही संभव होगा साकार
साम्य का वह सपना, जो देखा
भी है केवल अपनी आँखों ने

भवानीप्रसाद मिश्र

संभव है हमसे लोग कहें, 'बंसी छोड़ो'
बंदूकें लो; यदि ख्याल जगें सौंदर्य,
स्नेह और करुणा के तो शर्म करो;
उनके बदले तुम घृणा उचारो।
क्रोध भरो !
मुमकिन है इतना सब लेकिन यह
दशा सदा रह नहीं सकेगी, यह
निश्चय; भय भाव नहीं छाती
से सदा लगाने का; जो कायर
शक्ति जुटाने में है। निरत आज
वह कल समझेगा अर्थ अभय-युत
ममता का; कल वह गायेगा
गीत हमारी बंसी पर निर्भयता का भाईचारे
का समता का !

(२)

शान्ति के लिए युद्ध

शांति के लिए युद्ध ?
अवश्य; मगर वह
मुझे अपने से करना चाहिए;
और आँखें चार उस सपने से करना चाहिए
जो दिखेगी मुझे अहंता के
मर जाने पर !
अहंता चाहे मेरी हो,
चाहे मेरी जाति की,
चाहें मेरे राष्ट्र की !
मैं अगर अपने से नहीं लड़ता,
तो शांति के युद्ध में आगे नहीं बढ़ता !
सिर्फ शोर करता हूँ !
शांति के मोर्चे को
कमज़ोर करता हूँ !!
शांति किसी लापरवाह
राहगीर की जेब से गिरा पर्स नहीं है
कि किसी दूसरे लापरवाह

राहगीर को चलते-चलते
ठोकर से छूकर मिल जाए
शांति अपने शरीर की मणि है,
जो छाती को चीर कर मिलती है !
तमाशा नहीं है कि आपने
लगाया नारा
और कहा कि वो मारा
शांति के लिए युद्ध
हमें अपने से करना पड़ेगा,
इस युद्ध में हमारे आपे को
मरना पड़ेगा !
यह गाँठ बाँधने की बात है :
वरना सब तरफ रात है !
दूसरों को गाली देने से
कुछ नहीं होगा
अपने बदन की खाल
परत पर परत
उधेड़नी पड़ेगी !
अगर निबेड़नी है
तो युद्ध की विभीषिका
इस तरह निबेड़नी पड़ेगी !

हे जन-देवता !

नरेश मेहता

नये आलोक के जनदेवता का
पन्थ मंगल हो !!
अरुणमय पन्थ मंगल हो !!
गयीं अब डूब शोषण आँधियों की विष भरी छाँहें,
घिरीं आकाश में वे प्रलय सी इंसान की बाहें,
पुरातन सर्पफन को कुचल कर उगतीं नयी राहें,
मनुज की जीत के इस देवता का
पन्थ मंगल हो !!
किरणमय पन्थ मंगल हो !!
उठीं इतिहास के जलते सफों पर शक्ति मीनारें,
दिशाएँ भर रहीं ये अग्निकेशी क्रांति हुंकारें,
ढहीं जनरक्त स्नाता, गगनचुम्बी महल दीवारें,
फसल का मौर बाँधे देवता का
पन्थ मंगल हो !!
सुजनमन पन्थ मंगल हो !!
जले आकाश में सामन्त-युग के दुर्ग के मस्तूल,
मंजिल, ज्योति ज्वारों सी रचाती फेन के नवकूल,
धरा के खेत अंगों पर झरें नवबालियों के फूल
नये इस नैनउत्सव देवता का
पन्थ मंगल हो !!
विजनवन पन्थ मंगल हो !!

अमन का राग

शमशेर बहादुर सिंह

सच्चाइयाँ

जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती रहती हैं
हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों पर चाँदी के उन्मुक्त नाचते परों में
झिलमिलाती रहती हैं
जो एक हज़ार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समुन्दर है
उमंगों से भी फूलों की जवान कश्तियां
कि बसंत के नये प्रभात सागर में छोड़ दी गई हैं

ये पूरब पच्छिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द लपेट लिया
और मैं योरप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में बिभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ
बहुत आदिम बहुत अभिनव

हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे
सुलग उठे हैं
सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं

सिम्फ़ोनिक आनंद की तरह
यह हमारी गाती हुई एकता
संसार के पंचपरमेश्वर का मुकुट पहन
अमरता के सिंहासन पर आज हमारा अखिल लोक-प्रेसिडेंट
बन उठी है
देखो न हक़ीक़त हमारे समय की कि जिसमें
होमर एक हिंदी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है
कि जिसमें
फ़ैयाज़ खां बिटॉफ़ेन् के कान में कुछ कह रहा है
मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
म शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते
और आज तो मेरा टैगोर मेरा हाफ़िज़ मेरा तुलसी मेरा गालिब
एक एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
कुशल आपरेटर है
आज सब तुम्हारे ही लिए शांति का युग चाहते हैं
मेरी कुट्बूटू
तुम्हारे ही लिए मेरे प्रतिभाशाली भाई तेजसिंह
मेरे गुलाब की कलियों से हँसते खेलते बच्चो
तुम्हारे ही लिए तुम्हारे ही लिए
मेरे दोस्तों जिनसे ज़िंदगी में मानी पैदा होते हैं
और उस निश्छल प्रेम के लिए जो माँ की मूर्ति है
और उस अमर परम शक्ति के लिए जो पिता रूप है

शमशेर बहादुर सिंह

हर घर में सुख
शान्ति का युग
हर छोटा बड़ा हर नया पुराना हर आज कल परसों के
आगे और पीछे का युग
शान्ति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी पूरी गति है

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आए
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं

यह कौन मेरी धरती की शाँति की आत्मा पर क़ुरबान हो गया है
अभी सत्य की खोज तो बाक़ी ही थी
यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
उठती ही बढ़ती ही आ रही है
उसकी ईंटें धड़कते हुए सुर्ख़ दिल हैं
ये सच्चाइयाँ बहुत गहरी नींवों में जाग रही हैं
वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं
मैंने सोवियत यूसुफ़ के सीने पर कान रख कर सुना है

आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए

और तॉल्सतॉय मेरे देहाती यूनिग्रन होंठों से बोल उठा
और अरागों की ग्राखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्ख़ी बन गया
मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरूदा की भवों से
जाम की तरह टकराती है
वह मेरा नेरूदा जो दुनिया के शांति पोस्ट ग्राफ़िस का
प्यारा ग्रौर सच्चा क़ासिद
वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त ग्राशिक़
मैं पंत के कुमार छायावादी सावन भादों की चोट हूँ
हिलोर लेते वर्ष पर
मैं निराला के राम का एक ग्राँसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लौह पर्दों को
ऐटमी सूई सा पार कर गया पाताल तक
ग्रौर वहीं उसको रोक दिया
मैं सिर्फ़ एक महान विजय का इंदीवर जनता की ग्राँख में
जो शान्ति की पवित्रतम ग्रात्मा है

पच्छिम में काले ग्रौर सफ़ेद फूल हैं ग्रौर पूरब में पीले ग्रौर लाल
उत्तर में नीले कई रंग के ग्रौर हमारे यहाँ चम्पई साँवले
ग्रौर दुनिया में हरियाली कहाँ कहाँ नहीं
जहाँ भी ग्रासमान बादलों से ज़रा भी पोंछे जाते हों
ग्रौर ग्राज गुलदस्तों में रंग रंग के फूल सजे हुए हैं
ग्रौर ग्रासमान इन ख़ुशियों का ग्राईना है

ग्राज न्यूयार्क के स्काइस्क्रेपरों पर
शांति के डवों ग्रौर उसके राजहंसों ने
एक मीठे उजले सुख का हलका सा ग्रँधेरा ग्रौर शोर पैदा कर दिया है

ओर अब वो आर्जन्टीना को सिम्त अतलांतिक को पार कर रहे हैं
पाल रॉब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
एक विशाल सिम्फ़नी ब्राडकास्ट की है
और उदय शंकर ने दक्षिणी अफ्रीका में नये अजंता को
स्टेज पर उतारा है
यह महान नृत्य वह महान स्वर कला और संगीत
मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का
बिलकुल अपना निजी

युद्ध के नक्शों को क़ैंची से काट कर कोरियाई बच्चों ने
झिलमिली फूलपत्तों की रौशन फ़ानूसें बना ली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हज़ारों
देशों को एक दूसरे से मिलाने वाली रेलों के जाल में बिछ गया है
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के डब्बों की खिड़कियों से
हमारी ओर झाँक रहे हैं
वह फ़ौलाद और लोहा खिलौनों मिठाइयों और किताबों से लदे स्टीमरों के रूप में
नदियों की सार्थक सजावट बन गया है
या विशाल ट्रैक्टर-कम्बाइन और फ़ैक्टरी मशीनों के हृदय में
नवीन छंद और लय का प्रयोग कर रहा है

यह सुख का भविष्य शांति की आँखों में ही वर्तमान है
इन आंखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक रहे हैं
ये आँखें हमारे दिल में रोशन और हमारी पूजा का फूल हैं
ये आँखे हमारे क़ानून का सही चमकता हुआ मतलब
और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति हैं
ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा और हमारे बच्चों का दिल हैं

ये आँखें हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आँखें हमारा अपना नूर और पवित्रता है
ये आँखें ही अमर सपनों की हक़ीक़त और
हक़ीक़त का अमर सपना हैं
इनको देख पाना ही अपने आपको देख पाना है समझ पाना है
हम मनाते हैं कि हमारें नेता इनको देख रहे हों !

कवि और कविता

गंगाप्रसाद पांडेय

धुंधला सा यह चाँद गगन में चढ़ी फागुनी रातें,
आओ छत पर बैठ करें कुछ मन की मीठी बातें !
पावस के पनियारे लोचन राह ताकते हारे,
असफलता में रहे सिमटते मन मयूर झख मारे !
सीसी करती बहीं शरद की पागल प्रणय पुकारें,
बीत गया मधुमास लिये मन की मन में मनुहारें।
फागुन-सी मस्ती का मौसम, अच्छा किया पधारीं,
राग-रंग की अब की होली होगी सफल हमारी !
अब गुलाल से गाल लाल होने में तनिक न देरी,
जाने कहाँ कहाँ तक होगी इन हाथों की फेरी।
बहुत दिनों पर तुम आईं मैं भूखा प्यासा हारा,
प्रिय बन सकूँ तुम्हारा प्रेयसि दो यदि आज सहारा !
मैं भूला-भटका अटका सा मारा मारा फिरता,
अहंकार के घटाटोप से मौन गगन मन घिरता !
ऐसा क्या अपराध ? गीत मैं अब भी लिखता जाता,
पत्रों से पैसे मित्रों से वही प्रसंसा पाता !
पिछले दिन नेता साहब ने बड़ी बधाई दी थी,

मुझे होश था उनके संग में थोड़ी ही तो पी थी !
अफ़सर और मुसाहिब सारे पारे-से ढुलते हैं,
मेरे प्रीत गीत प्लावन में मिश्री से घुलते हैं !
वे फैशन की महिला जिनका अच्छा सा कुछ नाम,
'धन्य धन्य' से धरा हिलाती देतीं भर भर जाम !
पर तुम हो नाराज़ साज सब मेरे बने बिगड़ते,
बाहर से आवाज़ें आतीं, 'पतित हुए क्यों सड़ते ?'
तुम्हीं कहो कब मैंने तुमको घटिया गीत सुनाये,
तुमसे ही पा सहज प्रेरणा मैंने तार चढ़ाये ?
जो सुर तुमने चाहा मेरी विकल बँसुरिया बोली,
क्यों न आज फिर इन गीतों से प्राण पँखुरिया डोली !
क्यों न प्राण से प्यार प्राण का, पंकिलता मुरझानी,
क्यों न जगे पंकज के प्रेमी नव प्रभात गुण ज्ञानी !
चूक तुम्हारी या हो मेरी अब न विवाद बढ़ायें,
आओ कुछ दिन साथ रहें घन तम का भूत भगायें।
"ना जी, यहां कहाँ लक्ष्मी का लुटता खुला खज़ाना,
तुग वैभव में विके विटोही नित का आना जाना !
मुझे चाहिए साधक साथी वाणी का अभिमानी,
वाद्ययन्त्र से बढ़कर जिसका कण्ठ काव्य वरदानी।
जो जन-जन के सांस स्वरों में बोले जन की वाणी
मेरा प्रियतम वही एक कवि, युग-मर्यादा-मानी !
रहे न कुछ अधिकार तुम्हारे बेच दिया अपने को,
धन के मन से तोल सत्य अपनाया, तज सपने को !
तुम कवि के कंगाल रूप को धनी समझ कर ऐंठे,
सुख की सहज कल्पना में हीं प्राप्त छोड़कर बैठे !

गंगाप्रसाद पांडेय

शर्म धर्म मधु-गीत सुनाते धधक रहे अंगारे,
स्वार्थ-सने तुम आँख मूँदते बहते रक्त पनारे !
तुम्हें चाहिए निजता प्रभुता परियाँ रंगमहल की !
मरे मनुजता भले तुम्हें धुन अपनी चहल-पहल की !
सब को छोड़ स्वयं में रमकर भी कविजी कहलाते,
इस सम्बोधन से मन ही मन स्वयं तुम्ही घबड़ाते !
कवि का छोड़ धरातल तुमने नभ की कसी सवारी,
ऐसे वायु-विकम्पित प्रेमी से मैं हरदम हारी !
नहीं, सुनूँ आह्वान और आने में देर लगाऊं,
"सुमिरत सारद तुरत सिधाई" का उपहास उड़ाऊँ ?
वायु वाष्प के छैल छबीले तुम अपने में राजा,
शोभा तो देखो जब मुझसे कहते 'आ जा, आ जा !'
महा भूमिका महायुद्ध की करती है आह्वान,
नरपिशाच की लहर टपकती रक्तपान अनुमान,
खड़ी मौन मानवता तकती धरती थर थर कँपती,
कवि के सृजन करों की गूँथी माला मन में जपती !
बलि के बली बढ़ो तो आगे एक बार ललकारो,
शान्ति सुधा की सबल तरंगों का सागर छलकारो !
अहे, बुद्ध के वंशज घर घर डोलो अपनी बोलो
ऐसा करो रमो प्राणों में जीवन संगी हो लो !
वैभव छोड़ मुझे जो भजता मैं उसकी ही रानी
एक हाथ में आग संभाले एक हाथ में पानी ।
साहस हो तो कविर्मनीषी परभू और स्वयंभू,
मिट्टी की पीड़ा में पिघलो यह है प्राण प्रभू !
घर धरती मुझसे मिलने की क्षमता भी बढ़ जाती,

मही मनुजता फूलों सी खिल हारों में लहराती !
रक्तदान से, प्राणदान से, गानदान से चाहे,
युद्ध बीच जो आज खड़ा है शान्ति सिन्धु अवगाहे !
सामूहिक जीवन की रक्षा में जो मरता हँसता,
युग-जीवन में उसी एक कवि की मैं अमर सफलता !
सूर्य-ग्रहण यह निशा दिवस की राहु राक्षसी छाया,
तुम प्रकाश के प्रहरी दीपक अपना क्यों न जलाया !
तिमिर तोम में दीप शिखा की कवि की उज्वल छाती,
लेकर अन्तःपुर में पैठे बन्दी दीपक बाती ?
बुझे दीप जब प्रणय शलभ की करते मुझ से चर्चा
ठगी तुम्हारी स्वयं ठगी सी केवल बौद्धिक अर्चा,
मैं समवेदनशील बुद्धि की बनूँ कहो क्यों चेरी ?
क्षमा करो अब मैं जाती हूँ बजा करे रण भेरी !"
'रणभेरी सुन मैं भी जूझूँ यही तुम्हें क्या भाता,
काल कालिका बनी प्रियतमा कैसे भाग्य विधाता ?
अच्छा तो, रण रंग खेलने को मैं बाहर आऊँ,
रणोन्मत्त हो झपटूं जूझूं कवि की कला दिखाऊँ ?"
नहीं, नहीं जूझो मत बूझो कौन चाहता लडना,
कौन चाहता मानवता के पथ प्रकाश को छलना ?
उसे टोंक दो ताल ठोंक दो कवि हो तो जुट-जाओ,
उसे घोंट दो या विरोध में स्वयं तुम्हीं घुट जाओ !
अखिल श्रान्तिहर निखिल क्रान्तिकर शान्ति पर्व के गाने
गा न सके यदि भारत का कवि तो सब व्यर्थ तराने !
बसुधा के निरीह नर-नारी होंगे साथ तुम्हारे,
युद्ध-बन्द के छन्द बनेंगे गति के सबल सहारे !

गंगाप्रसाद पांडेय

रूस साथ है, चीन साथ है, जावा और सुमात्रा,
इन को लेकर बढ़ो साथ ही सफल तुम्हारी यात्रा!
तभी भेंट फिर होगी कविजी शान्ति-सदन में सुख से,
तुम न सही, मैं विषण्ण हूँ युद्ध भाव के दुख से!
शान्ति हुई तो कान्तिमयी मैं साथ तुम्हारे हूँगी,
जीवन के अविरल प्रवाह की स्नेह-सुधा भी दूँगी!
छोड़ अन्यथा कायर साथी रहना भला अकेला,
विदा विदा जाती हूँ जागो जगी जागरण बेला!"

"रूको आज कल जाना अब तो सभी तुम्हारे मन का,
शान्ति-दूत बन मैं घूमूँगा प्रतिनिधि हो जन जन का!"
अरे साधना के पहले तुम सुफल चाहते कैसे?
बनो मिलन के योग्य बताया मैंने तुमको जैसे!
तब मैं जयमाला लेकर आऊँगी बिना बुलाये,
गाँव-गाँव घूमूँगी तुमको अपने गले लगाये!
मधु मरंद मादक मृदंग की रंगमंच में थपकी,
देकर तुम्हें सुनाऊँगी मैं लोरी जीवन जय की!
तुम कवि में कामायनि कविता रूप रंग में रस में,
भुज भर भेंट सकेंगे जग को स्नेह शान्ति के बस में!"

त्योहार

रांगेय राघव

हरहराते नील रेशम से मनोहर खेत
जैसे काँपते हैं,
या गरजते सिन्धु से हुंकार जैसे फूटती है,
या किसी वीरान पर अनजान कोई बीज छोटा
फाड़कर तह धूल की है फूट उठता,
फूल उगता है महकता,
या कि आशा का उमड़ता ज्वार
रग रग से मचलकर ज़िन्दगी उठती
विभोर पुकार,
आज यौवन के अनेकों द्वीप
देते तिमिर को रह रह चुनौती
जल रहे हैं भोर तक—
इन्सान की दुनियाँ बचाये
ज्योति जीवन की जगाये !
डूबता सा झेलता तूफ़ान की ठोकर, भटकता,
अँधेरे में हिल रहा बेड़ा अभी तक
चल पड़ा है तीर का सन्धान कर अब

जब गगन में बज उठा है
—लो उषा का तार !
फूल की खुशबू जवानी है महकती,
सिन्धु का उत्साह है वह,
यह घुमड़ते बादलों में
बिजलियों की कौंध सी रह रह,
लरजती,
ज़िन्दगी के दौर में है
क्रान्ति का कम्पन जवाना,
अमर पथ निर्माण करती
शक्ति ऊर्ज्जस्वित रवानी,
यह जवानी ?
यह नहीं साम्राज्य के भूखे भयानक साथियों की
भीम तोपों के लिए रे खाद्य,
यह नहीं बारूद है जो
फाड़ मानव के हृदय को
स्नेह को दे रूँध
यह जवानी ?
यह सदा-मानव हृदय की प्रीति का
बन्धन मनोहर
एक स्वर का गीत है यह अति लुभाना
यह नहीं है बड़े जूते पहनकर आज़ादियों को
कुचलने को चल रहे पग
लौह के से मुख बनाकर,
यह सदा है एक लय पर नृत्य करते

आतृ-सुख विस्तार करते
सृजन रत पग
विहँसते मुख खिलखिला कर।
यह जवानी ?
यह नहीं है कुटिलता जो कर बहिर्गत
दास अन्यों को बनाए,
यह सदा फ़ौलाद की वे उँगलियाँ हैं,
जो कि अब हर देश की
दीवार खूनी बन्धनों की
तोड़ती हैं।
यह नहीं है मेंड़ जो हल रोकती है
शक्ति है यह ज़िन्दगी की,
ज़िन्दगी है एक सुन्दर बाग
उसका फूल है सुन्दर जवानी
जाति कुल औ' वर्ग-बन्धन की नहीं भाती इसे
कोई कहानी।
देखता हूँ
चीन, हिन्दुस्तान, यूरुप, रूस औ' ईरान,
सागर के अनेकों द्वीप—
धरती सिन्धु पर है जहाँ विजयिनि,
अमेजन की वह गहन जल राशि,
या वह नील नद की बदलती मिट्टी-सहेजा देश,
सब जगह पर दलित सूखी
ज़िन्दगी की आखिरी काली लकीरें
मिट रही हैं।

और अब इन्सान
बर्बर प्रकृति का स्वामित्व करता
वढ़ रहा है—
ज्ञान के ले दीप अब प्रति देश से
चलती जवानी,
गीत उठता है नया
नव शक्ति की जलती कहानी,
और अब प्रति देश की संस्कृति
बनाती एक तोरण
सज रहे हैं नए बन्दनवार
और मानव-पुत्र नूतन कीर्त्ति से सज
दीप्त करता भव्य जय जयकार
यह नया त्योहार !

गोरे गुलाबी नाखून से

वीरेन्द्रकुमार जैन

गोरे गुलाबी नाखून से छिलती नारंगी,
फूटती सुगंधा रस-नीहार
समय के आरपार :
रसा की आदिम रसधार,
आगामी प्रभात की बादामी किनार !
कल्प-लता उर्वशी के आलिंगन का
चिर किशोर इकरार।
पेरिस की मोहिनी संध्याओं की मायावी बहार।
रसा की आदिम रसधार :
नन्दन के फूलों की
अप्सरा-अंग-केलित गंधानिल।
रोम के फुलेलों की
बन्दिनी खुसबू
फूट पड़ी मुक्ति के आकाश में,
स्पार्टकिस* की जंजीरें तोड़ती
भुजाओं के लोक में :

---

*रोम के ग़ुलाम विद्रोह का नेता।

स्पार्टकस की
अमर जीवन वासना के अनन्तों में।
गोरे गुलाबी नाखून से छिलती नारंगी।
वसुन्धरा की चिर कुँवारी साध,
युग-युगान्तर में नित-नवीन-विश्वों की रचना,
नव-नवीन रूप-रंगों की भास्वर लीला।
वसुन्धरा की चिर कुँवारी साध,
बनती ही गई जो अशेष अगाध।
असंख्य मानव-युगलों की प्रणय-लीला में
उमड़ रही जो मरम की रस-राशि
चिर नूतन,
उसी का परिचय-परस :
प्रिया की गोरी मोतिया अँगुलियों बीच
छिलती-झूलती नारंगी की
रस-भीनी फुहार में।

क्षण-क्षण बदलते भूगोल में
पास खिंच आते खगोल की
नाचती रत्न-प्रभ तरंग माला।
जिसमें आगामी युगों और लोकों का
अकल्पित उजियाला।
जिसमें आदिम ज्योतिर्वर मानव के
नयनों का पारगामी आलोक,
और उसके अंगों में आलोड़ित
वासना के सागर।
भीतर विश्वामित्र की निर्विकल्प समाधि,

और बाहर मेनका का दुर्निवार रमण-लास्य ।
जिसमें वैदिक ऋषियों की सोम-रस-झारियाँ
और उनके मन्त्र-दर्शन की मुक्त ऊषा ।
जिसमें मानव-रक्त में तैरते
यूनानी महलों की दावतों में
उपल पात्रों में सजे फलों की छाया ।
जिसमें सामन्ती विलास की
इत्रों में डूबती-उतराती नशीली रातें :
मुग़ल शहज़ादियों के कबूतरी सीनों की
सुगंधों में दफ़न होती हसरत भरी आहें,
जिसमें ज़ेबुन्निसा की कविता की दर्दीली निगाहें ।
जिसमें कालिदास के मेघदूत के
बादलों में बिखर-बिखर जाते भव्य सपने :
रूप ले रहे जो आज
मानव की भुजाओं-बँधी—
भारत की गंगा में,
सोवियत की वोल्गा में,
नये चीन की हुई नदी की
दुर्दाम विद्युत् तरंगों में ।
साकार हो रहे जो सृष्टा मानव की
युगान्तर-गामिनी हथेलियों पर !
गोरे गुलाबी नाखून से
छिलती नारंगी से फूटती—
छूटती रस की संवेदन-फुहार,
समय के आर-पार,

मेरे किशोर प्यार से लगा कर,
आणविक युद्धों की
अकल्पित नाश-लीला के आर-पार :
इस हायड्रोजन बम की सत्यानाशिनी ललकार
के मस्तक पर लहराते,
शान्ति के नये प्रभात सागर पर
मानव की नई दुनिया की
कल्याणी जयजयकार ।
कि भू और द्यू के आलिंगन—
सिंधु-मंथन पर,
एक नई हेमवती, कल्पवती
पृथ्वी का आविर्भाव,
परिपूरित हुए जहाँ मानव के चिर अभाव ;
तुम्हारे गोरे गुलाबी नाखून से छिलती
नारंगी की सुगंधा रस-निहार :
समय के आर-पार,
चिर प्रगतिमान पूर्ण चेतना का
मुक्त अभियान, अभिसार ।

अब युद्ध नहीं होगा

नीरज

मैं सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिड़ा,
इस नई सुबह की नई फसल का क्या होगा,
मैं सोच रहा हूँ गर जमीन पर उगा खून,
मासूम हलों की चहल-पहल का क्या होगा?

यह हँसते हुए गुलाब, महकते हुए चमन,
जादू बिखराती हुई रूप की यह कलियाँ,
यह मस्त झूमती हुई बालियाँ धानों की,
यह शोख, सजल, शरमाती गेहूँ की गलियाँ,
गदराते हुए अनारों की यह मंद हँसी,
यह पेंगें बढ़ा-बढ़ा अमियों का इठलाना,
यह नदियों का लहरों के बाल खोल चलना,
यह पानी के सितार पर झरनों का गाना,
मैनाओं की नटखटी, ढिठाई तोतों की,
यह शोर मोर का, भौंर भृङ्ग की यह गुनगुन,
बिजली की कड़क-तड़क, बदली की चटक-मटक,
यह जोत जुगनुओं की, यह झींगुर की झुनझुन।
किलकारी भरते हुए दूध से यह बच्चे,

निर्भीक उछलती हुई जवानों की टोली,
रति को शरमाती हुई चाँद सी यह शकलें,
संगीत चुराती हुई पायलों की बोली,
आल्हा की ललकार, थाप यह ढोलक की,
सूरा मीरा की सीख, कबीरा की बानी,
पनघट की भरी गगरियों की यह छेड़छाड़
राधा की कान्हा से छुपछुप आनाकानी।
क्या इन सब पर खामोशी मौत बिछा देगी,
क्या धुन्ध-धुआँ बनकर सब जग रह जायेगा?
क्या कूकेगी कोयलिया कभी न बगिया में,
क्या पपिहा फिर न पिया को पास बुलायेगा?
मैं सोच रहा युग जो इतिहास लिख रहा है
क्या रक्त घुलेगा उसकी सादी स्याही में?
क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उतरेगा,
क्या चाँद सिसकियाँ लेगा ध्वंस तबाही में?
क्या खिज़ाँ चाट लेगी शबाब इन फूलों का,
क्या धूप अन्धेरे की दासी हो जायगी,
क्या क्रान्ति पहन लेगी जंजीरें सोने की,
क्या शान्ति मरघटों में छिप कर सो जायेगी?
क्या पी जायेगा रेगिस्तान नर्मदा को,
क्या गंगा का सैलाब भाप बन जायेगा?
झुक जायेगा क्या शीश हिमालय योगी का,
विन्ध्याचल में पतझार दुबारा आयेगा!
मैं सोच रहा, जो फूल रहा खेतों में उस—
बचपन को गोद मिलेगी क्या संगीनों की?

मिटकर मिट्टी के सर पर जो धर रहा ताज
उस श्रम को उम्र मिलेगी टैंक मशीनों की ?
जो अभी-अभी सिन्दूर दिये घर आई हैं ;
जिसके हाथों की मेंहदी अब तक गीली है,
घूँघट के बाहर आ न सकी है अभी लाज,
हल्दी से जिसकी चूनर अब तक पीली है,
क्या वह अपनी लाड़ली बहन साड़ी उतार,
जाकर बेचेगी निज चूड़ियाँ बाजारों में ?
जिसकी छाती से फूटा है मातृत्व अभी,
वह माँ क्या दफनायेगी दूध मज़ारों में !
क्या गोली की बौछार मिलेगी सावन को,
क्या डालेगा विनाश झूला अमराई में ?
क्या उपवन की डालों में फूलेंगे अँगार,
क्या घृणा बजेगी भौंरों की शहनाई में ?
असहाय बुढ़ापा तड़पेगा क्या मरघट में
बारूद करेगी क्या श्रृंगार जवानी का ?
क्या मानवता पर विजयी दानवता होगी,
क्या होगा अन्त पुराना नई कहानी का ?
चाणक्य, मार्क्स, एंजिल, लेनिन, गांधी, सुभाष,
सदियाँ जिनकी आवाजों को दुहराती हैं,
तुलसी, वर्जिल, होमर, गोर्की, शाह, मिल्टन,
चट्टानें जिनके गीत अभी तक गाती हैं,
मैं सोच रहा क्या उनकी कलम न जागेगी,
करवटें न बदलेंगी क्या उनकी क़ब्रें जब—
उनकी बेटी वेश्या बनाई जायेगी ?

जब घायल सीना लिये एशिया तड़पेगा,
तब बालमीक का धैर्य न कैसे डोलेगा ?
भूखी कुरान की आयत जब दम तोड़ेगी,
तब क्या न खून फिरदौसी का कुछ बोलेगा ?
सुन्दरता की जब लाश सड़ेगी सड़कों पर,
साहित्य पड़ा महलों में कैसे सोयेगा ?
जब कैद तिजोरी में रोटी हो जायेगी
तब क्रान्ति-बीज कैसे न पसीना बोयेगा ;
हँसिये की जंग छुड़ाने में रत है किसान,
है नई नोक दे रहा मजूर कुदाली को,
नभ बसा रहा है नये सितारों की बस्ती
भू लिये गोद में नये खून की लाली को।
बढ़ चुका बहुत आगे रथ अब निर्माणों का
बम्बों के दलदल से अवरुद्ध नहीं होगा,
है शांति शहीदों का पड़ाव हर मंज़िल पर,
अब युद्ध नहीं होगा, अब युद्ध नहीं होगा।

मेरा देश

वीरेन्द्र मिश्र

लो अब गाता हूँ—
कोई अन्धकार की चादर मेरी ओर बढ़ाए ना
जलता दीप है ये,
इससे प्यार मुझको !
कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
मेरा देश है ये
इससे प्यार मुझको !
मेरा देश है ये......

इसकी मिट्टी में है गर्मी काल की
इसमें ताकत है उठते भूचाल की
इतिहासों की गाथा इसके मूल में
एक चमकती दुनियाँ इसकी धूल में
इसके पवन-झकोरों में वह प्यास है
सिर्फ बहारों को जिसका आभास है
संझा और सकारे ऐसे हैं कहाँ ?
सूरज-चांद-सितारे ऐसे हैं कहाँ ?
श्यामघटा-बिजली-बरखा मनभावनी
रिमझिम बूँद फुहार, चदनियाँ सावनी।

आल्हा की हुंकार, रमायन की कथा
वृन्दावन के रास, गोपियों की व्यथा।
त्योहारों की धूम, दिवाली के दिय
होली के रंगों-बिन कोई क्या जिए ?
मनीपुरी के नृत्यों की चंचल परी
और भरतनाट्यम् पर छिड़ती बाँसुरी
यह सब मेरी दुनियाँ की आवाज़ है
इस पर ही तो होता मुझको नाज़ है
लो अब गाता हूँ—
कोई हँसती-गाती राहों में अंगार बिछाए ना
पथकी धूल है ये,
इससे प्यार मुझको !
कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
मेरा देश है ये,
इससे प्यार मुझको !
मेरा देश है ये......

२

झूमर-हँसली-पायल-नूपुर-रागिनी
काजल-मेंहदी-म्हावर क्वाँरी चाँदनी
शुभ-शकुनों के मंगल कलश-दुआर पर
अनब्याहे दृग उठते वन्दनवार पर
और एक दिन जाती घर से लाड़ली
कुंकुम की डोली में चम्पा की कली
देश कहीं, परदेश कहीं, किसकी लगन

किसकी ममता-डोरी, मन किसमें मगन
और एक दिन संघर्षों की राह पर
जाता है परिवार विलखता आह भर
साथ चली शमशान, उमंगों पर कफन
प्यासे मनवा प्यासे ही हो गए दफन !
लेकिन इसका अर्थ नहीं होता 'मरण'
मुझको जाना है न किसी की भी शरण ।
हँसी उड़ाने वाले जाते भूल हैं
मेरे मरघट में भी खिलते फूल हैं
इन चरणों में अब भी गति की प्यास है
इन अधरों पर तो अब भी उल्लास है !
लो अब गाता हूँ—
कोई मधुऋतु इस पतझर पर दानी हाथ उठाए ना
मेरा बाग है ये,
इससे प्यार मुझको !
कोई मेरे दुर्दिन को खरीद अहसान दिखाए ना
मेरा देश है ये,
इससे प्यार मुझको !
मेरा देश है ये......

३

कौन गया है रेखाओं को चीर कर
राँगोली से बनी हुई तस्वीर पर
वासन्ती मिलनानिल खुलकर नाचती ।
राग भरी-सी रूपम-गीतम बाँचती
संस्कृति की पतली डाली है झूमती

नई गुलाबी कला जिसे है चूमती
फूल रहे अँवबा, बोझिल अमराईयाँ।
मीठी-मीठी पीरभरी अँगड़ाइयाँ।
बरखामें बिरही की ममता जागती
हेर-हेर विरहिन को नदिया भागती
सब अपनी-अपनी प्रेमा की याद में
डूबे जाते हैं गहरे अवसाद में
क्वारी हवा गगन को देती छेड़ है
देखो टूट चली खेतों की मेंड़ है
बीराने से बादल करता प्यार है
पनघट पर बिजली की चीख पुकार हैं
जीवन की जमुना में जिसकी याद है
उसकी लहरों पर मुरली का नाद है
लो अब गाता हूँ—
कोई साँवरिया को उसकी राधा से बिछड़ाए ना
लीलाधाम है ये,
इससे प्यार मुझको !
कोई फूल-पात की कश्मीरी शबनम उजड़ाए ना
भीगी आँख है ये
इससे प्यार मुझको
मेरा देश है ये

४

किसी पेड़ को बना नसैनी तैश में
गन्ध चली जाती है नभके देश में
फिर जैसे अम्बर से झरते फूल हैं

भू की स्वप्नांजलि में जाते झूल हैं
लगता है—ये आई मीरा बावरी
नर्तित-गुंजित-जीवित राधा साँवरी
और 'सुनो भइ साधो' जुलहा बोलता
दास कबीरा विषमें अमृत घोलता
नभके पर्दे जलते सूरज-दीप से
चले सँदेसे इन्द्रराज के द्वीपसे
मेघदूत ज्यों कालिदासके राजके
छिड़ते मेघ-मल्हार किसी के साजके
तानसेन-संग आता बजूबावरा
सुन जिसको निज सुध-बुध खो देती धरा
'बरसत नयन हमारे'—पूरा झूमता
चित्रकूट के वनमें तुलसी घूमता·········
···गीतकारसे कहता मैं, तुम भी उठो
झूमो मत पिछली जयमें, आवाज़ दो !
लो अब गाता हूँ—
कोई मेरे सरगमके पर्दों में आग लगाए ना
मेरा गीत है ये,
इससे प्यार मुझको
कोई मरुथलके मरघटमें छन्दों को दफ़नाए ना
भैरव राग है ये,
इससे प्यार मुझको ।
मेरा देश है ये············

५

सुख का सपना हो चाहे दुखकी बदली

मेरी दुनियाँ गैरों से सौ बार भली
तुम भी सुनते होगे इस सन्देश को
नई उमर है मिली पुराने देश को
जाऊँगा अपनी मिट्टी को पूजता
देखूँगा अब नहीं स्वप्न को टूटता
सिर माथे लेना है धरती–धूल को
जिसने जन्मा है मधुवनमें फूलको...
...लेकिन यह क्या, होती है आवाज़ क्या ?
धुँआ, आग, चीत्कार, ध्वंस, है राज़ क्या ?
देशों में होती है खींचा-तान क्यों ?
शीतयुद्ध से दुनियाँ है हैरान क्यों ?
मेरे सुख-सपनों पर किसका हाथ है ?
क्यों पीछे चलती छाया-सी रात है ?
तोप लगाई है किसने इन्सान पर ?
क्या एटम गिरना है हिन्दुस्तान पर ?
नहीं-नहीं मैं नहीं इसे होने दूँगा
मैं अपने सब प्रश्नों का उत्तर लूँगा !
लो अब गाता हूँ—
कोई मेरी कंगाली पर अपना महल उठाए ना !
ये जो झोंपड़ी है,
इससे प्यार मुझको !
मैंने खींची लक्ष्मण-रेखा, कोई पाँव बढ़ाए ना !
मेरा देश है ये,
इससे प्यार मुझको !
मेरा देश है ये..............

बिजलियाँ गिरनें नहीं देंगे !

महेन्द्र भटनागर

कुछ लोग चाहे ज़ोर से कितना
बजाएँ युद्ध का डंका
पर, हम कभी भी शांति का झण्डा
ज़रा झुकने नहीं देंगे !
हम कभी भी शांति की आवाज़ को
दबने नहीं देंगे !
क्योंकि हम इतिहास के आरम्भ से
इंसानियत में,
शांति में विश्वास रखते हैं
गौतम और गांधी को हृदय के पास रखते हैं
किसी को भी सताना
पाप सचमुच में समझते हैं,
नहीं हम व्यर्थ में पथ में
किसी से जा उलझते हैं !
हमारे पास केवल
विश्वमैत्री का,
परस्पर प्यार का संदेश है !
हमारा स्नेह

पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए अवशेष है !
हमारे हाथ
गिरतों को उठाएँगे,
हज़ारों मूक, बंदी, त्रस्त, नत
भयभीत, घायल औरतों को
दानवों के क्रूर पंजों से बचाएँगे !
हमें नादान बच्चों की हँसी
लगती बड़ी प्यारी,
हमें लगती
किसानों के गडरियों के गलों से
गीत की कड़ियाँ मनोहारी !
खुशी के गीत गाते इन गलों में
हम कराहों और आहों को
कभी जाने नहीं देंगे !
हँसी पर खून के छींटे
कभी पड़ने नहीं देंगे !
नए इंसान के मासूम सपनों पर
कभी भी बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे !

उस समय भी

रमानाथ अवस्थी

जब हमारे संगी-साथी हमसे छूट जाँय
जब हमारे हौसलों को दर्द लूट जाँय
जब हमारे आसुओं के मेघ टूट जाँय

उस समय भी रुकना नहीं चलना चाहिए
टूटे पंख से नदी की धार ने कहा !

जब दुनियाँ तिमिर के लिफाफे में बन्द हो
जब तम में भटक रही फूलों की गन्ध हो
जब भूखे आदमियों औ' कुत्तों में द्वन्द हो

उस समय भी बुझना नहीं, जलना चाहिए,
बुझते हुए दीप से तूफान ने कहा !

आन्दोलन : शान्ति

प्रयागनारायण त्रिपाठी

आन्दोलन

(चाहे वह जन का हो
चाहे वह तन का हो)
आत्मा को सहसा ही कर देता है प्रदीप्त
दीप्त
जिसे शब्द नहीं
किन्तु दृष्टि की दृढ़ता ही उभार पाती हैं।

अनुराग

(चाहे वह जन का हो
चाहे वह तन का हो)
आत्मा को सहसा ही गहरे छू लेता है
कर देता है प्रशान्त
शान्ति
जिसे शब्द नहीं
किन्तु दृष्टि की मृदुता ही निखार पाती है।

उद्जन-बम के युग में

मनोहर श्याम जोशी

इस तोतापंखी कमरे में नीलम-मोती बिखराते हम,
मोरपंख हिलाते हम और श्वेत शंख बजाते हम;
चाँद डाल में
चाँद ताल में
चाँद-चाँद में मुस्काते हम ।
कभी, बहुत पहले कभी,
शायद यही छटा एक कविता बन सकती थी ।
इसका वर्णन कर,
इसके कानों में रुपहले रूपकों के झूमर डालकर,
इसकी आँखों में अलंकार का काजर डालकर,
चिपका कर कल्पना की मद्रासी बिंदिया इसके उन्नत भाल पर,
और आँखों ही आँखों में पूछे कुछ प्रश्नों के मूक उत्तर
इसकी फैली गदोलियों में थैली-झोलियों में भर-भर कर
मैं कभी,
बहुत पहले कभी, शायद कवि बन सकता था ।
मेरी काव्यकृति की प्रेरणा तू
शायद कवि-प्रिया बन सकती थी ।

कभी, बहुत पहले कभी
शायद यही घटा एक कविता बन सकती थी।
पर अब नहीं, नहीं अब नहीं
स्वर्ग के बादलों में नहाकर पृथ्वी की गंगा में मँजता है चाँद।
चिमनी के झरोखे पर सजता है चाँद।
उर-बसी, तेरी याद आ रही है।
दूर पटने से आती टेलीफ़ोन की दो लाइनों को जकड़कर
(मेरे हाथ सा) ठमकता है।
ठुमकता है मिज़राब सा,
कोयल के कंठ से छेड़ता सा एक मन्द्र, मध्यरात्रि का, सरगम।
मेरी बीवी, तेरी याद आ रही है।
एक तार, दो तार,—किस नाज़ से उतरता है चाँद ?
सुबह की पीली धूप में दीप्त नीम की हल्की पत्ती-सा
छूटकर बयार में हल्के-हल्के तिरता है।
टंगा है, रुक गया है।
सु-भ्रू, तेरी याद आ रही है।
ढल रहा है,
तेरे साथ वापस जाती ट्रेन की रोशनी सा खल रहा है,
क्षितिज पर, छिपता जाता यह तेरे बिना चाँद—
उस डाकिये सा जो खिड़की से दिखकर दरवाज़े के सामने से
चलता चला जाता है
यक्षिणी, तेरी याद आ रही है
किसी शाम को तुम बिना तार दिये आ गई होती हो, अरे !
पर या खुदा, कल सुबह ही मिल जाय तेरा तार।
या कि 'तूफ़ान' लेट हो

और तुम अभी ही आ रही होओ।
प्राण, तेरी याद आ रही है।
क्योंकि धक-धक-धक दिल के टेलिप्रिंटर पर
अक्षर-अक्षर कर
छप-छप जाती है यह फ़्लैश खबर
कि सावधान
लो ! अब विराट घृणा के कुंचित ललाट का धीरज छूटता है !
लो ! अब उद्जन के परम कण का सूर्य-सा शक्ति-स्रोत फूटता है !
हो सावधान !
ओ आधे-भगवान : इंसान !
अब दूर कहीं बहुत-बहुत-बहुत दूर
शुरू होती है वह अनन्त विध्वंस-प्रक्रिया-लड़ी
जिसमें न रह पायेगी यह अर्ध-चेतना की मीनार खड़ी,
जिसमें हो जायेंगे ये सबके सब काँच के सपने चकनाचूर !
ख़बरदार !
आ रहा ज्वार !
ये आधे-आधे वादे सब बह जायेंगे !
ये पुंसत्वहीन इरादे सब धरे रह जायेंगे !
ये ताश-पत्तों के महल सब के सब ढह जायेंगे !
ये दुर्बल बाँहों के अनिश्चित आलिंगन सब मर जायेंगे !
वे मोम-मुलायम प्रश्न जिन्हें तुम मुस्कुरा कर झेलते थे
जो तुम्हारे ओठों पर खिखियाते थे, खेलते थे,
सबके सब अब ताप-तर्जनी तले दब जायेंगे, गल जायेंगे !
वे फ़ौलादी प्रश्न जिन्हें पूछते तुम हिचकते थे, डरते थे,
जिनके संदेहहीन अस्तित्व पर तुम सन्देह प्रकट करते थे;

अब न्यूट्रोन की नोक पर चढ़ कर आयेंगे
तुम्हारे पिलपिले दिलों में धँस-धँस जायेंगे !
तुम्हारी ओस-सी आहों पर, नरम आँसुओं के गरम-मरस पर
प्रिया के प्यारे स्मरण पर, रूमानी फिल्म के समर्पण—मरण पर,
अंडाकार घेरों में वाहें उलझाये नाचते
दूत नभ के हँस-हँस जायेंगे !
सावधान ! अब इस जहान को जन नहीं उद्जन के भारी
दिल बसायेंगे !

यह क्षुद्र प्रेरणा, यह क्षुद्र प्यार,
यह क्षुद्र जीत, यह क्षुद्र हार,
यह क्षुद्र सन्तोष, ये क्षुद्र स्वप्न,
ये कभी-कभी का मधुर मिलन,
यह कभी-कभी का सुरा-पान,
ये कभी-कभी के प्रीत गान
ये कभी-कभी के आलिंगन चुम्बन,
प्रिय, फ्लैश पाते ही ये सब सहसा अर्थहीन जाते हैं बन ।
पढ़ता है मन जब खबर
प्रिय सहसा कुम्हला जाती है
अधखिली कली पंख-हल्की कविता की,
जाती है मर ताजी तितली तरल प्रेरणा की,
आती है यह समझ
कि अब बस कविता वही होगी
जो इस विराट घृणा के समक्ष
किसी इतनी ही विराट प्रीत का सत्य रखेगी,

कवि बस वही होगा जो उस सत्य को खोजेगा,
कवि-प्रिया बस वही होगी जो उसकी खोज के पथ को
प्रकाशवान करेगी।
अब कविता का हस्तवरद बनाना होगा।
अब सातों समुद्रों पर, माँ धरा पर, मोटा चदरा फैलाना
होगा।
नीले निर्मल जल को, हरी भरी धरती को,
रेडियमधर्मी कुकर्मी कृत्रिम बादल की बेशरमी से
बचाना होगा !
अन्यथा ये कल्लोल-विभोर मछलियाँ,
ये मैथुनमग्न कबूतरियाँ,
सब मर जायेंगी, मर जायेंगी !
न कवि रह सकेंगे
न कविताएँ ही रह पायेंगी !

वृद्ध हैं हम

ओंकारनाथ श्रीवास्तव

वृद्ध हैं हम
वृद्ध हो गए हों हम
ऐसा नहीं है
हम वृद्ध ही हुए हैं उत्पन्न
नहीं जाना शैशव यौवन
नग्न तन रहे, परन्तु
शैशव नहीं था वह
कपड़े का राशन था
और वह कम था।

चीखे चिल्लाए हम बार बार
धरती अम्बर में गूँज गूँज उठी वह पुकार
पर वे स्वातंत्र्य जीत लेने के
नारे नहीं थे।
मन को मुग्ध कर लें
एक अंतर के भावों को
जाने अनजाने हर अंतर में भर दें
शून्य कुहास्पष्ट मौन को नूतन स्वर दें

कुछ का कुछ कर दें
सच, ऐसे गीत तो हमारे नहीं थे
हम भूखे थे
चीखते चिल्लाते थे
ऊपर से गाते थे
सच जो बताएँ तो
बहाना बनाते थे ।
अजी क्या ज़माना था
रुपया रहा आना था
लड़े मरें
नहीं लड़े तो भी मरें
दो तरफ़ा मार थी
डी. आई. आर. की
तब हम उत्पन्न हो रहे थे ।
बचपन नहीं था चिन्ताएँ थीं
यौवन नहीं था चिन्ताएँ थीं
जीवन नहीं था चिन्ताएँ थीं
केवल चिन्ताएँ थीं
जब हम उत्पन्न हो रहे थे ।
कीमतें ऊँचे आसमानों को चूमती थीं
मौतें वायुयानों पर चढ़ी चढ़ी घूमती थीं
हार मान लेते
हम हृदय थाम लेते थे
रह रह घबराते थे

सहम ठिठुर जाते थे
तन मन पर
आत्मा पर माथे की झुर्रीयाँ लिए
हम उत्पन्न हो रहे थे ।
हम से न माँगो, वत्स
भोले कुतूहलों के
चिर उत्सुक प्रश्नों भरे
मीठे और प्यारे गीत
अनुभव-वृद्ध हैं हम ।
अरे हम से न माँगो
जोश रोश भरी हुंकारें
ज्वारों की फुंकारें
डूबने लगे हैं, अब
चिन्ता-वृद्ध हैं हम
रूखी-सी एक यही
सीख हम तुम्हें देंगे—
लड़ो नहीं
इस अनर्थ-कारी रक्तपात में पड़ो नहीं
जैसे भी संभव हो लड़ो नहीं
लड़ना बुरा है
हमारी ओर देखो
तुम्हारे वृद्ध हैं हम ।

नवीन स्वप्न

गोपालकृष्ण कौल

तर्कबुद्धि बोले एक, "शान्ति क्या होती है ?
आदमी के लड़ने की आदत पुरानी है ।
कमज़ोर बनते हैं ख़ुराक शक्तिशाली की,
शान्ति सिर्फ़ सपना है, झूठी कहानी है ।"

युद्धप्रिय बोले, "ठीक कहते हो तर्कबुद्धि
व्यक्ति के महत्व को तुमने ही जाना है
और तो सागर की विशालता पर मुग्ध हैं
बूँद को तुमने ही सिर्फ़ पहिचाना है ।
शान्ति के पुजारी करते हैं जनता की बात
जनता तो सिर्फ़ एक भीड़ का नाम है
बरसाती मेढ़कों सी बढ़ती ही जाती जो
चीखना-चिल्लाना बस ज़िसका एक काम है ।
पेड़ और पौधों की काट-छाँट करने से—
बगिया का जैसे साज--श्रृंगार होता है,
इसी तरह बढ़ती आबादी कम करने को—
युद्ध-देवता का सदा अवतार होता है ।
युद्ध की ज्वाला अगर फैलती न दुनिया में
चहल-पहल हमारी चीत्कार-बन जाती है

ज़िन्दगी की भूख तब बोती है क्रांति बीज
सारी अमीरी अत्याचार कहलाती है ।"

तर्कबुद्धि को लगा ठीक युद्धप्रिय का तर्क
बोले—"भीड़वादियों का शास्त्र ही गलत है ।
जनता तो पश्चिम की काली दिशा है जिधर
व्यक्ति का उदय नहीं होता सूर्य अस्त है ।
युद्ध है व्यक्ति की वीरता का विकास चिन्ह
जो शक्तिशाली हैं वे ही विजय पाते हैं ।
कायर ही जनता का संस्कृति का नाम ले
व्यर्थ में ही शान्ति शान्ति शान्ति चिल्लाते हैं ।"

युद्धप्रिय ने कहा कि "शाबास तर्कबुद्धि
विचारक स्वतन्त्र तुम, तुम ही हो बुद्धिमान !
विश्व-मन्दिर में नया शौर्य लाने के लिये
आओ, हम करें युद्ध-देवता का आह्वान ।"

तर्कबुद्धि ने रचा ध्वंस का दर्शन-शास्त्र
युद्धप्रिय ने विरचे नये नाशक हथियार
युद्ध-देवता का किया एक ने मन प्रसन्न
दूसरे ने किया उसकी देह का श्रृंगार ।
पृथ्वी की प्लेट में मनुजता का ज़िन्दा मांस
युद्ध-देवता को नाश्ते के लिये लाया गया ।
मिटाई गई भूख ज़िन्दगी के भोजन से
पानी की जगह ताजा लहू पिलाया गया ।

यौवन के प्यासे स्वप्न, बचपन की किलकारी
बुढ़ापे का सम्मान सब-कुछ मिटाया गया,

सृष्टि के प्राणों का सारा रस-रूप-गन्ध
युद्ध की बुभुक्षित ज्वाला में चढ़ाया गया ।
देवता प्रसन्न हुए करने लगे अट्टहास
गूँजा प्रतिध्वनि बन विश्व में हाहाकार ।
ज्यों-ज्यों कराहती थी घायल मनुजता इधर
त्यों-त्यों होता था उधर मृत्यु का जयजयकार ।

इस हाहाकार में, घर के एक कोने में
गूँज उठी शहनाई कि बज उठी जल-तरंग ।
मुन्ने और मुन्नी के गुड्डे और गुड़ियों की
विवाह की बरात की छाई थी नव-उमंग ।
गुड़िया थी नव-किरण कि गुड्डा था शरद चाँद
खिलौने बराती थे, स्वप्न थे वन्दनवार ।
विनाश से किसी तरह बच कर इस कोने में
छिपकर बैठा हो ज्यों मानव का सरल प्यार ।
यह देख युद्ध के देवता को आया क्रोध
रक्तसना हाथ उसने उधर भी बढ़ा दिया
मृणाल के नाल सी कोमल गर्दनों पर तब
उसने निर्मम हो अपना दाँत भी गड़ा दिया ।
तब अबोध कण्ठों में करुणा ही चीख उठी
बुद्ध, ईसा, गाँधी का बलिदान बोल उठा ।
तर्कबुद्धि में भी सुप्त पिता की ममता जगी
युद्ध-देवता का सिंहासन ही डोल उठा ।
चौंक कर जाग पड़ा तर्कबुद्धि, स्वप्न टूटा
पास लेटी मुन्नी को गले से लगा लिया

पथभ्रष्ट मानव की आँखों में शान्ति-स्वप्न
यों उसके ही बेटे ने फिर से जगा दिया ।
शान्ति नहीं राजनीति शान्ति नहीं शीतयुद्ध
शाति सिर्फ ममता और कला की पुकार है ।
काँटों पर फूलों की विजय का नवीन स्वप्न
झंकृत जन-प्राणों में प्यार का सितार है ।
शान्ति नव अंकुर है कि शान्ति है उगती फसल,
सुहागिन माभूमि की माँग का है सिंदूर ।
शान्ति सब के बेटों का आकर्षक जन्म-दिन
शान्ति शीत-घटा जिसमें नाचता मन-मयूर !

(२)

सह-अस्तित्व

मन नहीं मिलता, तो क्या हुआ ?
आओ, हम साथ-साथ रहें
एक-दूसरे की सुनें और कहें,
जो असह्य है—
उसको भी सहें !
एक-दूसरे में झाँकें
अन्दर उपेक्षित पड़े मोतियों की कीमत आँकें !
बिना मन मिले भी—
अगर साथ-साथ रहे
अपने सुख बाँटे, दूसरों के दुख सहे
तो निश्चित है सच मानो—

मन की बस्तियों के वासी झगड़ना छोड़ देंगे
बेरुख पगडण्डियों का रुख ही मोड़ देंगे
और खेल-खेल में बनाए घरौंदे जो—
उनकी दीवारें बिन-पूछे तोड़ देंगे !
इसलिए कहता हूँ—
दूर मत रहो !
दूर रहकर भी पास रहो,
लेकिन पास रहकर दूर मत रहो !
दिलों के सुदूर अनजान फासले
वाहनों पर बैठ कर
किये नहीं जाते पार;
इसलिए आओ, पैदल चलें—
अकेले नहीं, साथ-साथ
एक-दूसरे के दुख में पलें !
दिल एवरेस्ट है
चोटी तक जाने के लिए
साथ-साथ चलना होगा
जरूरत पड़ी तो साथ-साथ गलना होगा !
लेकिन,
चोटी तक पहुँचने के लिए—
अकेले नहीं, साथ-साथ !!

गूँजी दूर तक आवाज़...

विनोद शर्मा

गूँजी दूर तक आवाज़...
भारत के सरल विश्वास की आवाज़...
जनमन के स्वरों में—
एशिया के कंठ से उभरी
हवा की लहरियों पर तैरती
बह दूर पश्चिम में
सुलगते द्वेष से उन्मत्त—
मानव के अहम् पर
शान्ति की बदली बनी, बरसी।
सजग वह प्यार की आवाज़...
मानव की सहज दुर्वृत्तियाँ सहमी।
हृदय से आज भय की सर्पिणी ने कुंडली तोड़ी।
नहीं अब बीज अपने बो सकेगी युद्ध की माया,
कि अपनी शक्ति से अब आदमी—
मरुथल खिलायेगा।
कि अपनी शक्ति के दुर्भाव को—
वह भूल जायेगा।

संतरी हैं चौकस !

युगजीत नवलपुरी

ऐ तार, झनझना तू ! ऐ राग, उतर आ तू !
ऐ तान, गगन-तल के सब शून्य भरे जा तू !
हे स्वरो, मूर्च्छनाओ, हो मुक्तकंठ गाओ !
जीवन के सम-विषमपर हे ताल, थिरक जाओ !
कोरस दिगंतव्यापी, मानव की जाति गाये !
जगती नये संवादी रूपों में उभर आये !
सब तार मिल चुके हैं, सुर भी सधे झुके हैं !
कुछ ही कि बेसुरे हैं, जिनके लिए रुके हैं !
वे परे हटके साधें, जब तक नहीं सधें स्वर !
कोरस के साथ गाने का फिर मिलेगा अवसर !
लेकिन न उनके कारण कोरस रुका रहेगा !
तुक का विकल्प रहते क्यों बेतुका रहेगा
पिंगल बिकास क्रम का ?
कुछ शोर नाश के घन उज्जन के अधम बम का
करते हैं हवाओं में ! जीवन को धमका-धमका
उस शोर को डुबा तू, निर्माण-राग गा तू;
ऐ तार झनझना तू !

हर कोने में दुनिया के, गुंजार उठ ऐ कोरस !
तेरे स्वरों के पहरे के संतरी हैं चौकस !

ऐ फूल, मुसकुरा तू ! ऐ भोर जाग जा तू !
मदहोश हवाओं में ऐ खेत, लहलहा तू !
हे नर्मदा, हे गंगा, कुम हे, इरावती हे,
हे ह्वाङ-हो, हे राइन, वोल्गा, मिसीसिपी हे !
सुख-धार सी बही जा ! वैभव बिखेरती जा !
धरती को उर्वरा कर, नगरों को जगमगा कर,
यन्त्रों को शक्ति देकर प्रिय प्राणनाथ सागर
में लय हुई चली जा, निर्भय बही चली जा !
बाँहो की पेशियो तुम, कुछ करके दिखा दो तो !
पुरखों से जुत न पायीं, उन परतियों को जोतो !
तुम पर जहाँ कहीं भी बंधन अभी हैं बाकी,
उनको झटक के तोड़ो, जय हो मनुष्यता की !
स्वच्छंद श्रम चटानों को फूल-सा खिला दे !
सातों जनम के प्यासे, सहरा को रस पिला दे !
बांटूके झोंपड़ों में, लौ ज्ञान की जला दे !
ठिठुरे कुमेरु के घर चैती बहार ला दे !
गुलज़ार चमन कर दे, सौरभ से जगत भर दे !
रंगीन पंखुड़ियों के सरका दो ज़रा परदे,
हमसाया सितारों से यह रूप मत लजा तू !
ऐ नूरजहाँ अपना यौवन सजा-धजा तू !

ऐ फूल मुसकरा तू !

निर्भय निशंक होकर मिट्टी में प्यार बोकर,

रस-रंग-गंध-कोमल उत्पल युगल-अरव-दल
संसार का खिला तू ! ऐ फूल मुसकुरा तू !
मुट्ठी में कस रखें जो झंझा-प्रलय को बरबस,
तेरे अमन के प्रहरी सब सन्तरी हैं चौकस !
हिमवान हँसे मँहके ! लयमान हवा लहके !
ऐ साँस, प्राण भर दो, रसखान रसा चहके !
लहरों की लौ जगाले, मर्मर के गीत गा ले,
धूलों के दिये बाले शुभ आरती सजा ले,
पट खोल, राह तेरी तकता प्रभात-मंदिर,
मीरा, प्रकाश पाहुन, परिछन में बिछा दे सिर !
पामीर इमन गाये, वंशी चिली बजाये
सतरंगिनी सुरधनु सी संस्कृति निखार पाये,
युग चार तीन डग हों जीवन को वह हुनर दे !
जागे शिला अहल्या, हर परस राम कर दे !
तुम पर त्रिकाल न्योंछें ! ये प्रलय मेघ पोंछें,
तेरा सिंगार हो, ये उलटी लटों को औंछे,
मुसका कि युग पुरुष की फिर कसमसाये नस-नस,

इस रूप, इस हँसी के सब संतरी हैं चौकस !
ऐ लाल पालने के, किलकारियाँ भरे जा
मुसका, कि मामता का हुलसे खिले करेजा !
है चाँद तेरा मामा, सुनता नहीं बुलाना,
होके सयाना उसको, बरबस पकड़के लाना,
दुनिया को बाँट देना अमृत का वह खजाना,
या पोल सुधाकरता की खोज के दिखाना !

जो-जो अतीत हारा, वह जीत लायगा तू !
जो-जो अतीत जीता, वह भी जुगायगा तू !
भूत धुन में तेरे भावी को निगलने की,
पर दाल यहाँ उसकी हरगिज़ नहीं गलने की !
है वर्तमान जागा, सुख से भविष्य किलको !
पर ताड़ क्यों बनाऊँ मैं भूत के इस तिल को !
आँचल के दिये ! झंझा उठने नहीं पायेगी,
ऐसी बँधेगी घुट-घुट के जान गँवायेगी !
तू इत्ता बड़ा होगा हमवार फ़िज़ाओं में,
रंगीन आसमानों की नर्म हवाओं में !
तू इत्ता बड़ा होगा प्यारों की घाटियों में !
आशिस की पुतलियों में औ' चूमा-चाटियों में !
यद्यपि न जानते हैं क्या-क्या ग़ज़ब करेगा !
धरती से, गगनतल से क्या-क्या तलब करेगा !
गुल कौन खिलायेगा किन टहनियों के ऊपर !
क्या-क्या नवीनताएँ लाके धरेगा भूपर !
जो आज नहीं वह कल कैसा बनायगा तू !
पर यह तो जानते हैं, कुछ रंग लायगा तू !
जो भी ग़ज़ब करेगा, स्वागत तलब करेगा !
ऐसा न कुछ करेगा जो बेसबब करेगा !
क्या खूब ! मगर हम तो तैयार हवा कर लें !
तू इत्ता बड़ा होगा, हमवार फ़िज़ा कर लें
आकाश के आँगन में मँडलाते हुए बादल.
असगुन की आँख जसे आँज़े हुई हो काजल,
कल की फ़िकिर में तेरे लेने नहीं देते कल,

उनको बुहार फेंकें, आकाश हो ले निर्मल,
फिर उसपे चमकना तू कल को मेरे सितारे !
जुट आये हैं करोड़ों, छोड़ेंगे बेबुहारे ?
पर यह तो धुन हमारी, तू ताकने लगा क्या ?
भोली सी अखड़ियों से यों भाँपने लगा क्या ?
तू मचल, मचलने में मन मोद का हरे जा !
ऐ लाल पालने के, किलकारियाँ भरे जा !
किलकारियों की गतपर खिल-खिल पड़ेगा कोरस,
साज़ों की लय में गुंजित होगा नया ही ढारस !
इस छन्द के लिए ही बेचैन रहा है रस !
लल्ला, ललक कि पहरे के संतरी हैं चौकस !
संसृति के सँवरने को, रूपाभ निखरने को,
रंगों के उभरने को, गुनगुन के बिहरने को,
सौरभ के बिखरने को, रसधार के झरने को,
मार्दव के ठहरने को, रुखड़ाहटें हरने को,
विस्तार के भरने को, संस्कृति के पसरने को,
नरदेव को वरने को सच होके उतरने को
पर मार रहे सपनो, गुंजार रहे सपनो,
मँडलाते हुए सपनो, ललचाते हुए सपनो !
स्वागत के गान रचकर, फूलों के हार सँचकर
तैयार हो रहे हम ! अब देर बहुत ही कम !
कवि की सुलेखनी पर, छेनी की तेज़ अनीपर
घुँघरू पर, तूलिका पर, साज़ों पर, गीतिका पर
कुछ देर और थिरको, धरती: अभी ख़ातिर को
तैयार हो रही है, हमवार हो रही है !

सुस्ताये रहो, कल को, दम मारने को पलको,
फ़ुरसत नहीं मिलेगी, मिहनत बहुत पड़ेगी !
युग-युग का कूड़ा-कचरा, हर-सू पड़ा है बिखरा,
यह भूख, प्यास, बंधन, यह ठगी, लूट, चूसन,
यह भरम यह जहालत, रंगोनसल की नफ़रत,
मत-मज़हबों के अन्तर—यह फ़रेबों का लशकर,
अकड़ी हुई ग़रीबी, जकड़ी हुई, सड़ी भी,
यह हाय, यह गुहारें, यह आग की बौछारें,
यह दिल का धुआँ, आँखों की तरल गरल-धारें,
यह प्यार का जनाज़ा, यह मृत्यु का तक़ाज़ा,
मानव का रक्त ताज़ा, जो दो न तो तनाज़ा,
यह धुकधुकी, यह ख़तरे, यह ख़ौफ़नाक नख़रे
युद्धों की धमकियों के, यह बानगी के झोंके,
सब को बुहारना है, जग को सँवारना है !
फ़ुरसत नहीं मिलेगी, मिहनत बहुत पड़ेगी !
लानी हँसी-ख़ुशी है, रचना नयी करनी है,
वैभव उगाना होगा, गौरव जगाना होगा,
बोना-निराना होगा, तवना-सिराना होगा,
विकसानी होगी समता, क्षमता, दुलार, ममता,
गति तेज़ करनी होगी, मति तेज़ करनी होगी,
श्रम समारोह होगा, दुस्तर आरोह होगा,
तूफ़ान बाँधना है, सागर को साधना है,
लपटें सँवारनी हैं, झपटें बुहारनी हैं,
धरती को ओंछना है, आकाश पोंछना है,
कौंधें सहेजनी हैं, घर-घर में भेजनी हैं,

कण-कण से लहर लेकर, अणु-अणु से क़हर लेकर,
परतें विदाहनी हैं, जोतें उगाहनी हैं,
सहरे लहारने हैं, बादल भहारने हैं,
सरिहार गूँथने हैं, तिवहार तो घने हैं,
मिहनत बहुत पड़ेगी, फ़ुरसत नहीं मिलेगी !
कुछ देर और थिरको, धरती अभी ख़ातिर को
तैयार हो रही है, हमवार हो रही है,
सपनो, तुम्हारी ख़ातिर, बन-ठन रही है नीरस,
कान्हे बसा रहे हैं, वंशी में रास के रस,
छुम-छुम-छनन से उतरो, लय से, जतन से उतरो,
चैनो-अमन से उतरो, सब संतरी हैं चौकस !